अग्निशिखा एवम् पुरोधा
नवम्बर २०२४
सच्चाई

अग्निशिखा एवम् पुरोधा नवम्बर २०२४ वर्ष २, अंक ४, पूर्णांक १६

विषय-सूची

सच्चाई

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय	३
सच्चाई क्या है	५
सच्चाई साधना में सहायक होती है	११
सच्चाई की शक्ति	१५
सच्चाई के पथ पर बाधाएँ	२२
कपट की परछाइयाँ	३०
पूरी तरह सच्चा कैसे बनें	३४

पुरोधा

दैनन्दिनी		३७
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : भगवद्गीता के विषय में (२)	नवजातजी	४०
दीप का त्यौहार (कविता)	बालकवि बैरागी	४४
मन चंगा तो कठौती में गंगा	डॉ.रामचरण महेन्द्र	४५
विश्वास का झरना...	वन्दना	४७

पाठकों को हम यह याद दिला दें कि वैसे पुराने कलेवर की 'अग्निशिखा' का यह हमारा ५५वाँ वर्ष चल रहा है।

सन्देश

... "ऐकान्तिक रूप से भगवान् के लिए जीने" का ठीक-ठीक अर्थ क्या है? मेरे लिए तो यह मन में यान्त्रिक रूप से दोहराया जाने वाला एक विचार-भर है; लेकिन माँ, इसे चरितार्थ करने के लिए क्या किया जा सकता है?

भगवान् के लिए जीने का अर्थ है कि तुम जो भी करो भगवान् को अर्पित करते चलो और जो करो उससे व्यक्तिगत फल की कामना न करो। निश्चय ही शुरू में, जब भगवान् केवल एक शब्द या अधिक-से-अधिक एक भाव होता है—*अनुभूति* नहीं, सारी चीज़ निरी मानसिक रहती है। लेकिन अगर तुम सच्चा प्रयास बारम्बार करो तो एक दिन अनुभूति होती है और तुम अनुभव करते हो कि उत्सर्ग किसी वास्तविक चीज़ को दिया गया है जो अनुभवगम्य, ठोस और उपकारी है। तुम जितने अधिक सच्चे और अध्यवसायी होगे उतनी ही जल्दी अनुभूति आयेगी और उतने ही अधिक समय तक रहेगी।

हर एक के लिए मार्ग के ब्योरे अलग-अलग होते हैं, लेकिन सच्चाई और अध्यवसाय सभी के लिए समान रूप से अनिवार्य हैं। **श्रीमाँ**

सम्पादकीय : आध्यात्मिक क्रमविकास एक बहुत विशाल और जटिल प्रक्रिया है जो कई विभिन्न पथों पर क्रिया करती है। लेकिन हम भले किसी भी आध्यात्मिक पथ का अनुसरण करें, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एकमात्र तत्त्व है — सच्चाई। साधना का फल व्यक्ति के अभ्यास की सच्चाई और निष्कपटता पर निर्भर करता है।

यह अंक सच्चाई को समर्पित है जो पथ का सबसे महत्त्वपूर्ण मौलिक गुण है।

अगर तुम अपना काम पूरी सच्चाई के साथ,
भगवान् के चरणों में अर्पित भेंट के रूप में करो,
तो काम उतना ही लाभ पहुँचायेगा जितना ध्यान।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. २०५

सच्चाई क्या है

पूरी तरह से सच्चा-निष्कपट होने का अर्थ है, एकमात्र भागवत 'सत्य' को पाने की ललक रखना, अपने-आपको अधिकाधिक माँ भगवती के हाथों में सौंप देना, अपनी सभी व्यक्तिगत माँगों और कामनाओं को त्याग देना, एक यही अभीप्सा रखना कि मैं अपने जीवन की प्रत्येक क्रिया भगवान् को समर्पित करूँगा और अपने अहंकार को बीच में लाये बिना, उनके द्वारा दिये कार्य के रूप में अपना जीवन जिऊँगा। यही है दिव्य जीवन का आधार।
CWSA खण्ड २९, पृ. ५१ **श्रीअरविन्द**

मधुर माँ, सच्चाई का ठीक-ठीक अर्थ क्या है?

सच्चाई के कई स्तर होते हैं।

... पहला स्तर तो तब है जब कोई, उदाहरण के लिए, यह दावा करता है कि उसके अन्दर बहुत अभीप्सा है और वह आध्यात्मिक जीवन चाहता है, परन्तु साथ ही पूरी तरह... कैसे कहा जाये?... निर्लज्ज होकर ऐसी चीज़ें करता है जो आध्यात्मिक जीवन से एकदम उलटी हैं। यह सच्चाई का नहीं, कपट का ही एक स्तर है जो बिलकुल स्पष्ट है।

लेकिन एक दूसरी अवस्था है... जो इस तरह है : सत्ता का एक भाग है जो अभीप्सा करता है और कहता है और सोचता भी है और अनुभव भी करता है कि वह बहुत ज़्यादा चाहेगा कि अपने दोषों और त्रुटियों से पिण्ड छुड़ा ले; साथ ही, दूसरे भाग हैं जो इन दोषों और त्रुटियों को बहुत सावधानी से छिपाते हैं ताकि उन्हें उघाड़ने और उन पर विजय पाने के लिए बाधित न होना पड़े। यह बहुत आम बात है।

और अन्त में, अगर हम काफ़ी आगे निकल जायें, अगर हम इस वर्णन को काफ़ी आगे बढ़ा सकें तो, जब तक सत्ता का कोई भाग ऐसा है जो भगवान् के लिए केन्द्रीय अभीप्सा का विरोध करता है, तब तक तुम पूरी तरह सच्चे नहीं हो। यानी, पूरी सच्चाई या निष्कपटता एक बहुत ही विरल चीज़ है।

... जब, किसी भी समय, चाहे कुछ भी हो, सत्ता अपने-आपको पूरी

तरह भगवान् के अर्पित रखे और केवल भागवत 'इच्छा' को ही चाहे, जब सत्ता में चाहे कुछ भी क्यों न हो रहा हो, किसी भी क्षण क्यों न हो, हमेशा, समग्र सत्ता पूर्ण ऐक्य के साथ भगवान् से कह सके और भगवान् के लिए अनुभव करे : "तेरी 'इच्छा' पूरी हो", जब यह सहज, समग्र, पूर्ण हो *तब* तुम निष्कपट हो। लेकिन जब तक यह प्रतिष्ठित न हो जाये तब तक यह मिश्रित सच्चाई रहती है, कम या अधिक मिश्रित, वहाँ तक मिश्रित रहती है जहाँ तक तुम बिलकुल सच्चे नहीं होते।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ४४८-५०

मानसिक, प्राणिक, भौतिक सच्चाई

क्या कोई मानसिक सच्चाई, कोई प्राणिक सच्चाई, कोई भौतिक सच्चाई है? इन सच्चाइयों में क्या भेद है?

स्वभावतः ही, सच्चाई का तत्त्व सर्वत्र एक ही है, पर सत्ता की अवस्थाओं के अनुसार उसकी क्रिया अलग-अलग है।

... पूर्णतः सच्चा होने के लिए यह आवश्यक है कि कोई पसन्दगी, कोई कामना, कोई आकर्षण, कोई नापसन्दगी, कोई सहानुभूति या विद्वेष, कोई आसक्ति, कोई विकर्षण न हो। हमें वस्तुओं का एक पूर्ण, सर्वांगीण अन्तर्दर्शन प्राप्त हो जिसमें प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर हो और सभी वस्तुओं के प्रति हमारा एक ही मनोभाव हो : सत्य-दर्शन का मनोभाव। मनुष्य के लिए यह कार्यक्रम पूरा करना स्पष्ट ही बहुत कठिन है। जब तक वह स्वयं को दिव्य रूप में रूपान्तरित करने का निश्चय नहीं कर लेता, उसका अपने अन्दर की इन सभी विपरीत वस्तुओं से मुक्त होना लगभग असम्भव प्रतीत होता है। और फिर भी, जब तक वह अपने अन्दर उन्हें वहन करता है, वह पूर्ण रूप से सत्यनिष्ठ नहीं हो सकता। अपने-आप ही मानसिक, प्राणिक और यहाँ तक कि भौतिक क्रियावली मिथ्या बन जाती है। मैं भौतिक पर ज़ोर दे रही हूँ, क्योंकि इन्द्रियों की क्रिया भी दोषपूर्ण हो जाती है : जब तक मनुष्य में कोई पसन्दगी होती है, वह वस्तुओं को उनके सत्य-रूप में नहीं देखता, नहीं सुनता, नहीं चलता, नहीं अनुभव करता। जब तक ऐसी चीज़ें हैं जो तुम्हें अच्छी लगती हैं और ऐसी चीज़ें हैं

जो अच्छी नहीं लगतीं, जब तक तुम किन्हीं विशेष वस्तुओं से आकर्षित होते और दूसरी वस्तुओं से विकर्षण का अनुभव करते हो, तुम वस्तुओं को उनके सत्य-स्वरूप में नहीं देख सकते; तुम उन्हें अपनी प्रतिक्रियाओं, अपनी पसन्दगी या नापसन्दगी में से देखते हो। इन्द्रियाँ माध्यम हैं जो अव्यवस्थित हो जाती हैं, ठीक जिस तरह संवेदनाएँ, हृद्गत भावनाएँ और विचार हो जाते हैं। अतः, तुम जो कुछ देखते, जो कुछ स्पर्श करते, जो कुछ अनुभव करते और सोचते हो उसके बारे में निस्सन्दिग्ध होने के लिए तुम्हारे अन्दर एक प्रकार की पूर्ण अनासक्ति होनी चाहिये; और स्पष्ट ही यह कोई आसान काम नहीं है। परन्तु उस क्षण तक तुम्हारा ज्ञान पूरी तरह सही नहीं हो सकता और इस कारण वह सच्चा नहीं है।

... कुछ दूसरे अधिक सूक्ष्म कपट हैं और उन्हें पहचानना अधिक कठिन है। जैसे, तुम्हारे अन्दर जब तक सहानुभूतियाँ और विद्वेष-भावनाएँ हैं तब तक बिलकुल स्वाभाविक रूप में तथा मानों स्वतःस्फूर्त रूप में, अपनी अनुकूल चीज़ के विषय में तो तुम्हारा अनुकूल मत होगा, और अपनी नापसन्द चीज़ के विषय में प्रतिकूल। और ऐसी स्थिति में भी सच्चाई का अभाव एकदम स्पष्ट होगा। परन्तु हो सकता है कि तुम अपने को धोखा दो और यह न देख सको कि तुम झूठे हो। तब उस स्थिति में मानों तुम्हें मानसिक कपट का सहयोग प्राप्त होता है। कारण, यह सच है कि सत्ता की या सत्ता के अंगों की अवस्था के अनुसार थोड़े-से भिन्न-भिन्न प्रकार के कपट हैं। केवल इन कपटों का मूल स्रोत सर्वदा एक ही क्रिया होती है जो कामना तथा व्यक्तिगत प्रयोजनों की प्राप्ति की चेष्टा से—अहंभाव से, अहंभाव से उत्पन्न सभी सीमाओं एवं कामना से उत्पन्न सभी विकृतियों के सम्मिश्रण से उत्पन्न होती है।

वास्तव में, जब तक अहं है, कोई यह नहीं कह सकता कि कोई सत्ता पूर्णतः सच्ची है, यद्यपि वह वैसा बनने का प्रयास करती है। हमें अहं से परे जाना होगा, अपने-आपको सम्पूर्ण रूप में भागवत 'संकल्प' के हाथों में सौंप देना, बिना कुछ बचाये और बिना हिसाब लगाये समर्पण कर देना होगा... तब हम पूर्णतः सत्यनिष्ठ हो सकते हैं, पर उससे पहले नहीं।

... इसके अलावा, सच्चा होने में एक अद्भुत आनन्द है। सच्चाई का प्रत्येक कार्य अपने-आपमें अपना प्रतिदान लेकर आता है : पवित्रता

की, ऊपर की ओर उड़ान भरने की, उस मुक्ति की भावना ले आता है जिसे मनुष्य तब पाता है जब वह मिथ्यात्व के एक छोटे-से कण को भी त्याग देता है।

सत्यनिष्ठा ही रक्षा-कवच है, संरक्षण है, पथ-प्रदर्शक है, और अन्त में रूपान्तरकारिणी शक्ति है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ४७४-७६

सच्चाई तथा योग

"सवाल है सच्चाई का। अगर तुम सच्चे नहीं हो तो योग शुरू मत करो।" श्रीमाँ

सच्चाई शायद सब चीज़ों में सबसे कठिन है और शायद सबसे अधिक प्रभावशाली भी।

अगर तुम्हारे अन्दर पूर्ण सच्चाई है तो तुम्हारी विजय निश्चित है। यह अत्यधिक कठिन है। सच्चाई है सत्ता के सभी तत्त्वों में, सारी गतिविधियों में (चाहे वे भीतरी हों या बाहरी), सत्ता के सभी भागों में यह एकमात्र संकल्प लाना कि हमें केवल भगवान् का ही अंश होना है, भगवान् के लिए ही जीना है, भगवान् जो चाहते हैं उसी को चाहना है, भागवत संकल्प को ही अभिव्यक्त करना है, भगवान् के अतिरिक्त कोई और शक्ति-स्रोत नहीं रखना है।

और तुम देखोगे कि ऐसा एक भी दिन नहीं, एक भी घण्टा नहीं, एक भी क्षण नहीं जब तुम्हें अपनी सच्चाई को तीव्र बनाने की ज़रूरत न पड़े, सुधारना न पड़े—भगवान् को धोखा देने से एकदम इन्कार। पहली बात है, अपने-आपको धोखा न देना। व्यक्ति जानता है कि भगवान् को धोखा नहीं दिया जा सकता; असुरों में सबसे चतुर भी भगवान् को धोखा नहीं दे सकता। यह सब समझ लेने के बाद भी, हम देखते हैं कि व्यक्ति बहुधा अपने जीवन में दिन-भर बिना जाने, निरायास, लगभग यन्त्रवत् अपने-आपको धोखा देने की कोशिश करता है। व्यक्ति जो कुछ करता है उसकी, अपने शब्दों की और अपनी क्रियाओं की हमेशा ही अनुकूल व्याख्या कर लेता है। पहले यही होता है। मैं यहाँ स्पष्ट दीखने वाली चीज़ों की बात नहीं

कर रही, जैसे लड़-झगड़ कर आदमी कहता है: "यह दूसरे का दोष है।" मैं दैनिक जीवन की छोटी-छोटी चीज़ों की बात कर रही हूँ।

मैं एक बच्चे को जानती हूँ जो एक दरवाज़े से टकरा गया और फिर उसने दरवाज़े को एक अच्छी-सी लात जमायी! बात यही है। हमेशा ग़लती दूसरे की होती है, दूसरा ही भूलें करता है। बचपन की अवस्था पार कर लेने के बाद भी, जब तुम्हारे अन्दर तर्क-बुद्धि आ जाती है, तुम बहुत मूर्खतापूर्ण बहाने बनाते हो: "अगर उसने यह न किया होता तो मैं ऐसा न करता।" लेकिन बात इससे ठीक उलटी होनी चाहिये!

सच्चे बनना

मैं इसी को सच्चा या निष्कपट होना कहती हूँ। जब तुम किसी के साथ हो और निष्कपट हो, तो तुरन्त तुम्हारी प्रतिक्रिया यही होनी चाहिये कि तुम ठीक चीज़ करो, भले तुम जिसके साथ हो वह ठीक चीज़ न भी करे। सबसे सामान्य उदाहरण ले लो: कोई नाराज़ होता है, उसे चोट पहुँचाने वाली बातें कहने की जगह तुम चुप रहते हो, स्थिर और शान्त रहते हो। तुम्हें उसके ग़ुस्से की छूत नहीं लगती। ज़रा अपनी ओर देखने से ही तुम्हें पता लग जायेगा कि यह आसान है या नहीं। यह बिलकुल प्रारम्भिक चीज़ है। यह जानने के लिए कि तुम सच्चे और निष्कपट हो या नहीं, बहुत-ही छोटा-सा आरम्भ है। और मैं उन लोगों की बात नहीं कर रही जो हर छूत के, यहाँ तक कि भद्दे मज़ाकों के भी शिकार हो जाते हैं; मैं उनकी बात भी नहीं कर रही जो वही मूर्खता करते हैं जो दूसरे करते हैं।

मैं तुमसे कहती हूँ: अगर तुम अपने-आपको पैनी दृष्टि से टटोलो तो तुम अपने सामान्य मनोभाव में निष्कपट होने की कोशिश करते हुए भी अपने अन्दर सैकड़ों कपट और कुटिलताएँ देखोगे। तुम देखोगे कि यह कितना कठिन है।

मैं तुमसे कहती हूँ: अगर तुम अपनी सत्ता के सभी तत्त्वों में, अपने शरीर के कोषाणुओं तक में सच्चे और निष्कपट हो, अगर तुम्हारी सारी सत्ता समग्र रूप से भगवान् को चाहती है तो तुम्हारी विजय निश्चित है, लेकिन उससे ज़रा भी कम में नहीं। इसी को मैं सच्चा या निष्कपट होना कहती हूँ।

मैं ऐसी स्पष्ट दीखने वाली चीज़ों की बात नहीं कर रही जैसे कोई अपने आवेगों और सनकों के अनुसार काम करे और कहे: "मैं अब अपना नहीं रहा, मैं पूरी तरह भगवान् का हूँ। भगवान् ही मेरे अन्दर सब कुछ कर रहे हैं, वे ही मेरे अन्दर क्रियाशील हैं।" यह तो अपने-आपमें काफ़ी अनगढ़ चीज़ है। मैं ज़्यादा सुसंस्कृत लोगों की बात कर रही हूँ जो ज़रा कुलीन होते हैं और अपनी इच्छाओं को छिपाने के लिए सुन्दर-सा चोगा डाल लेते हैं।

दिन-भर में कितनी चीज़ें, कितने विचार, कितने संवेदन, कितनी क्रियाएँ शुद्ध रूप से भगवान् की ओर अभीप्सा में मुड़ी होती हैं? कितनी? मुझे लगता है कि सारे दिन में एक भी हो तो उसे सुनहरे अक्षरों में लिखा जा सकता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ५-७

जब मैं कहती हूँ: "यदि तुम निष्कपट हो तो तुम्हारी विजय निश्चित है," तो मेरा मतलब सच्ची निष्कपटता से होता है, मेरा मतलब होता है कि तुम हमेशा सच्ची ज्वाला बने रहो जो आत्म-निवेदन के रूप में जलती रहती है। सच्ची निष्कपटता है केवल भगवान् के लिए और भगवान् के द्वारा जीने का तीव्र आनन्द, और यह अनुभव कि उनके बिना किसी चीज़ का अस्तित्व नहीं है, उनके बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं रहता, किसी चीज़ का कोई हेतु नहीं होता, किसी चीज़ का कोई मूल्य नहीं होता, किसी चीज़ में रस नहीं होता जब तक कि उस सबके प्रति जिसे हम भगवान् कहते हैं (क्योंकि किसी-न-किसी शब्द का उपयोग तो करना ही होगा), यह पुकार, यह अभीप्सा, परम सत्य के प्रति उन्मीलन न हो। सारे विश्व के अस्तित्व का यही एकमात्र हेतु है। उसे अलग कर दो और सब कुछ ग़ायब हो जायेगा।

***'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ५, पृ. ७-८*

सच्चाई साधना में सहायक होती है

आध्यात्मिक जीवन की तैयारी करने के लिए किस प्रारम्भिक गुण का विकास करना चाहिये?

इसे मैंने बहुत बार बतलाया है, परन्तु यह उसे दोहराने का एक सुअवसर है : वह है *सच्चाई*।

एक ऐसी सच्चाई जो पूर्ण और निरपेक्ष बन जानी चाहिये, क्योंकि आध्यात्मिक पथ में **एकमात्र** सच्चाई ही तुम्हारी संरक्षिका है। यदि तुम सच्चे-निष्कपट नहीं हो तो निश्चित रूप से अगले ही पग पर गिर कर अपना सिर फोड़ लोगे। सभी प्रकार की शक्तियाँ, संकल्प, प्रभाव, सत्ताएँ उपस्थित रहती और इस ताक में रहती हैं कि उस सच्चाई के अन्दर अत्यन्त छोटी-सी भी दरार हो जाये, और वे तुरन्त उस छिद्र के रास्ते अन्दर घुस आती हैं तथा तुम्हें अस्तव्यस्त अवस्था में फेंकना शुरू कर देती हैं।

इसलिए कोई भी चीज़ करने, कोई भी चीज़ आरम्भ करने, कोई भी चीज़ करने की कोशिश करने से पहले, **सबसे पहले** इस विषय में निस्सन्दिग्ध हो जाओ कि तुम केवल उतने ही सच्चे नहीं हो जितने कि तुम हो सकते हो, बल्कि उससे भी अधिक बनने की इच्छा रखते हो।

क्योंकि एकमात्र वही तुम्हारा संरक्षण है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३००

कृपा तथा सुरक्षा हमेशा तुम्हारे साथ रहती हैं। किसी भी आन्तरिक या बाहरी कठिनाई या कष्ट को अपने ऊपर हावी मत होने दो; रक्षक 'भागवत शक्ति' की शरण में जाओ।

अगर तुम हमेशा इसे श्रद्धा और सच्चाई के साथ करो तो तुम अपने अन्दर किसी चीज को खुलते हुए देखोगे जो सभी सतही विक्षुब्धताओं के बावजूद हमेशा शान्त तथा अचञ्चल बनी रहेगी।

CWSA खण्ड ३१, पृ. ७२४-२५

'भागवत कृपा' के बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता। यह भी पूरी

तरह सच है कि अगर व्यक्ति सच्चा और निष्कपट है तो वह भगवान् तक पहुँच कर रहेगा। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि वह तुरन्त, बिना प्रयास के, बिना विलम्ब के पहुँच जायेगा। तुमने यह भूल की कि तुमने भगवान् के सामने यह शर्त रख दी कि पाँच-छह सालों में तुम उन्हें पा लोगे, और फिर तुम्हारे अन्दर सन्देह ने इस कारण डेरा डाल लिया कि तुम्हें अब इसका कोई परिणाम ही नहीं दीख रहा है। व्यक्ति केन्द्रित रूप से सच्चा हो सकता है, लेकिन फिर भी, सिद्धि के प्रारम्भ हो सकने से पहले उसके अन्दर कई ऐसी चीज़ें हो सकती हैं जिनको बदलना ज़रूरी होता है। उसके अन्दर ऐसी सच्चाई होनी चाहिये जो हमेशा डटी रहे—क्योंकि भगवान् को पाने की प्यास को कोई चीज़ नहीं बुझा सकती—न विलम्ब, न निराशा न ही किसी भी तरह की कोई भी कठिनाई।
CWSA खण्ड २९, पृ. ११६-१७

श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के प्रभाव को ग्रहण करने के लिए श्रद्धा ही एकमात्र आवश्यकता है, साथ ही, आध्यात्मिक पथ का अनुसरण करने के लिए पूर्ण सच्चाई की और स्वयं को उनके प्रभाव के प्रति खोलने के लिए आवश्यकता है, संकल्प तथा सामर्थ्य की; लेकिन सामान्यतः यह सामर्थ्य सच्चाई तथा श्रद्धा के परिणाम-स्वरूप आता है।
CWSA खण्ड ३२, पृ. १०६

अगर वह दूर से सहायता ग्रहण नहीं कर सकता तो यहाँ रह कर योग जारी रखने की आशा कैसे कर सकता है? यह ऐसा योग है जो मौखिक निर्देशों या किसी बाहरी चीज़ पर नहीं बल्कि निर्भर करता है पूर्ण नीरवता में स्वयं को उद्घाटित करने और शक्ति तथा प्रभाव को ग्रहण करने पर। जो लोग दूर रह कर इसे ग्रहण नहीं कर सकते वे यहाँ भी उसे प्राप्त नहीं कर सकते। साथ ही, अपने अन्दर निश्चलता, निष्कपटता, नीरवता, धीरज तथा लगन को प्रतिष्ठापित किये बिना यह योग नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसमें बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना होता है और उन पर पूरी तरह से और निश्चित रूप से विजय पाने में कई-कई वर्ष लग जाते हैं।
CWSA खण्ड ३५, पृ. ५९७

'श्रीमाँ की शक्ति' जब कार्य करती है, उसे पहचानने का सबसे सच्चा और सबसे निश्चित तरीक़ा क्या है और कैसे पहचाना जाये कि वे अहंकारमयी और अज्ञानी शक्तियाँ नहीं हैं?

व्यक्ति को बस पूरी तरह से सच्चा-निष्कपट होना चाहिये, मन के तर्क-वितर्कों द्वारा अपनी कामनाओं और कमज़ोरियों पर लीपा-पोती करके उन्हें उचित सिद्ध नहीं करना चाहिये, उसे बिना किसी पक्षपात के, चुपचाप, अपने-आप पर, अपनी क्रियाओं पर निगरानी रखनी चाहिये और माँ के 'प्रकाश' का आवाहन करना चाहिये—तब वह हर एक चीज़ को उस प्रकाश में जान जायेगा। भले वह एक ही बार में यह करने में सफल न हो, लेकिन इस प्रकाश के रहते उसके निर्णय और उसकी भावनाएँ धीरे-धीरे स्पष्ट और निश्चित होती जायेंगी और उसके अन्दर उचित चेतना पनपने लगेगी जिससे वह प्रत्येक वस्तु को उसके सत्य-रूप में देख सकेगा।

जहाँ तक कामनाओं की बात है, उचित तरीक़ा है—एक सच्ची अभीप्सा रखना और श्रीमाँ की शक्ति को पुकारना कि वे तुम्हारे अन्दर कार्य करें। जब माँ की ज्योति और उनकी शक्ति तुम्हारे अन्दर कार्य करती हैं तब वे उन सभी चीज़ों को तुम्हें दिखलायेंगी जिन्हें तुम्हें अपने अन्दर बदलना है और अगर तुम उन्हें अपनी सच्ची और पूर्ण स्वीकृति दे दो तो वे तुम्हारे लिए उन्हें बदल भी देंगी।

CWSA खण्ड ३२, पृ. २२५, ३९३

वही चाहना जो भगवान् चाहते हैं

आपका प्रेम ही मेरे लिए सच्चा आश्रय और एकमात्र बल है। माँ, मैं आपको जो कुछ अर्पित करता हूँ वह एक गँदला मिश्रण है जिसके बारे में मैं लज्जित हूँ, लेकिन उसे आप ही शुद्ध कर सकती हैं।

मेरे बहुत प्यारे बच्चे, अर्पण का रूप चाहे जैसा हो, जब वह सच्चाई के साथ किया जाता है तो हमेशा अपने अन्दर भागवत प्रकाश की एक चिनगारी लिये रहता है जो पूर्ण सूर्य में विकसित हो सकती और समस्त सत्ता को आलोकित कर सकती है। तुम मेरे प्रेम के बारे में विश्वस्त रह

सकते हो, तुम मेरी सहायता के बारे में विश्वस्त रह सकते हो और हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. २४२

तुम्हारी साधना में महत्त्वपूर्ण चीज है, पग-पग पर सच्चाई। अगर वह हो तो भूलें सुधारी जा सकती हैं और उनका बहुत महत्त्व नहीं होता। अगर ज़रा भी कपट हो तो वह तुरन्त साधना को नीचे खींच लेता है। लेकिन यह सतत सच्चाई मौजूद है या नहीं या किसी बिन्दु पर पतन हो जाता है—यह एक ऐसी चीज़ है जिसे तुम्हें अपने अन्दर देखना सीखना होगा; अगर उसके लिए गम्भीर और स्थायी इच्छा हो, तो उसे देखने की शक्ति आ जायेगी। सच्चाई दूसरों को सन्तुष्ट करने पर बिलकुल निर्भर नहीं करती—यह आन्तरिक मामला है और केवल ऐकान्तिक रूप से मेरे और तुम्हारे बीच की बात है। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १४, पृ. ७४

जीवन में शान्ति और आनन्द के लिए आवश्यक शर्त है, पूरी सच्चाई के साथ वही चाहना जो 'भगवान्' चाहते हैं। लगभग सभी मानव दुर्गतियाँ इस तथ्य से आती हैं कि हमें प्रायः हमेशा यह विश्वास होता है कि हम भगवान् की अपेक्षा ज़्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि हमें क्या चाहिये और जीवन को हमें क्या देना चाहिये। अधिकतर मनुष्य चाहते हैं कि दूसरे मनुष्यों को उनकी प्रत्याशाओं की पुष्टि करनी चाहिये और परिस्थितियों को उनकी कामनाओं की पुष्टि करनी चाहिये—इसीलिए वे कष्ट भोगते और दुःखी रहते हैं। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १६, पृ. ४८४-८५

अपने प्रति ईमानदार रहो—
(आत्म प्रवञ्चना नहीं)।
भगवान् के प्रति सच्चे रहो—
(समर्पण में सौदेबाज़ी नहीं)।
मानवजाति के साथ सीधे रहो—
(दिखावा और पाखण्ड नहीं)।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. ७६

सच्चाई की शक्ति

केवल तभी सहायता मिलती है जब मनुष्य के अन्दर बदलने की सच्ची इच्छा होती है; यदि किसी व्यक्ति में सच्चे रूप में परिवर्तित होने की इच्छा हो तो वह चीज़ एक शक्तिशाली सहायता बन जाती है क्योंकि तब वह परिवर्तन ले आने की शक्ति, परिवर्तन साधित करने का आधार तुम्हें प्रदान करती है। परन्तु हमें सच्चे हृदय से परिवर्तन चाहना होगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४१८

जब कभी तुम्हारे अन्दर सच्चाई होती है तब तुम देखते हो कि सहायता, पथ-प्रदर्शन, कृपा-शक्ति सर्वदा तुम्हें उत्तर देने के लिए मौजूद हैं और तुम फिर जल्दी ही अपनी भूल सुधार लेते हो।

प्रगति करने की अभीप्सा में, सत्य पाने के संकल्प में, वास्तव में शुद्ध —आध्यात्मिक जीवन में जिसे शुद्ध समझा जाता है—बनने की आवश्यकता महसूस करने में जो सच्चाई है यही सच्चाई सब प्रकार की उन्नति करने की चाभी है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २०५

... इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि भगवान् के किस रूप की तुम आराधना करते हो अथवा यहाँ तक कि किसको तुम अपना पथ-प्रदर्शक चुनते हो, यदि तुम्हारा आत्म-दान पूर्ण है और तुम सम्पूर्णतः सच्चे हो तो आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करना तुम्हारे लिए **सुनिश्चित** है...

आध्यात्मिक उपलब्धि—जिस रूप में पुराने समय में उसे समझा जाता था, जैसा कि उसे अब भी सामान्यतया समझा जाता है—वह है किसी-न-किसी प्रकार से, चाहे अपने अन्दर अथवा किसी-न-किसी रूप के द्वारा, परात्पर के साथ एकत्व प्राप्त करना; यह है परात्पर के अन्दर, परम के अन्दर तुम्हारी सत्ता का विलयन, इस विलयन में तुम्हारे व्यक्तित्व का लगभग तिरोधान। यह, तुम जिसे अपने-आपको दे देना चाहते हो, उस इष्टदेव के चुनाव की अपेक्षा पूर्णतः निर्भर करता है तुम्हारे आत्म-दान की सच्चाई तथा परिपूर्णता पर। कारण... तुम्हारी अभीप्सा की सच्चाई ही तुम्हें सभी

सीमा-बन्धनों के पार ले जायेगी और परात्पर को खोज निकालेगी, क्योंकि तुम स्वयं अपने अन्दर 'उन्हें' वहन करते हो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. २९४-९५

जीवन में सब प्रकार के भय, संकट और विनाश से बच कर चलने के लिए दो ही चीज़ों की आवश्यकता है, दो चीज़ें जो सदा साथ रहती हैं—एक तो भगवती माँ की कृपा, और दूसरी, तुम्हारी ओर से ऐसी आन्तरिक स्थिति जो श्रद्धा, निष्ठा और समर्पण से पूर्ण हो। तुम्हारी श्रद्धा विशुद्ध, निश्छल और पूर्ण हो। मन और प्राण की अहंकारमयी श्रद्धा—जो महत्त्वाकांक्षा, अभिमान, दम्भ व मानसिक अहंकार से और प्राण की स्वेच्छाचारिता, वैयक्तिक माँग तथा निम्न प्रकृति की तुच्छ सन्तुष्टियों की कामना से कलुषित होती है—एक निम्न और धुँए से ढकी अग्निशिखा है जिसकी लौ ऊपर स्वर्ग की ओर नहीं उठ सकती। यही मानो कि तुम्हारा जीवन तुम्हें भगवान् के कार्य के लिए और भगवान् की अभिव्यक्ति में सहायता देने के लिए ही मिला है। केवल भागवत चेतना की विशुद्धता, शक्ति, ज्योति, विशालता, स्थिरता और आनन्द और उस चेतना का यह आग्रह कि उसके द्वारा तुम्हारे मन, प्राण और शरीर का रूपान्तर हो—इसके सिवा और कुछ न चाहो। कुछ मत माँगो, माँगो केवल दिव्य आध्यात्मिक और अतिमानसिक सत्य, उस सत्य की सिद्धि पृथ्वी पर, तुम्हारे अपने अन्दर और उन सबके अन्दर जो इसके लिए बुलाये और चुने गये हैं। उन परिस्थितियों को माँगो जो इस सत्य की सृष्टि के लिए और इसकी विजय के लिए आवश्यक हैं।

तुम्हारी निष्ठा और समर्पण सच्चे और सम्पूर्ण हों। जब तुम अपने-आपको देते हो तो पूरी तरह दो, बिना किसी माँग के, बिना किसी शर्त के और बिना किसी संकोच के दो, ताकि तुम्हारे अन्दर जो कुछ है वह सब भगवती माँ का हो जाये, और कुछ भी अहं के लिए या अन्य किसी शक्ति को देने के लिए बच न रहे।

तुम्हारी श्रद्धा, निष्ठा और समर्पण जितने अधिक पूर्ण होंगे, भगवती माँ की कृपा और रक्षा भी तुम्हारे साथ उतनी ही अधिक रहेंगी। और जब भगवती माँ की कृपा और अभय-हस्त तुम पर हैं तो फिर कौन-सी चीज़ है

जो तुम्हें स्पर्श कर सके या जिसका तुम्हें भय हो? कृपा का छोटा-सा कण भी तुम्हें सब कठिनाइयों, बाधाओं और संकटों के पार ले जायेगा; क्योंकि यह मार्ग माँ का है, इसलिए किसी भी संकट की परवाह किये बिना, किसी भी शत्रुता से प्रभावित हुए बिना—चाहे वह कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो, चाहे वह इस जगत् की हो या अन्य अदृश्य जगतों की—इसकी पूर्ण उपस्थिति से घिर कर तुम अपने मार्ग पर सुरक्षित होकर आगे बढ़ सकते हो। इसका कृपा-स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। क्योंकि भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है। आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट, अवश्यम्भावी और अनिवार्य है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ८-९ **श्रीअरविन्द**

कठिनाइयों के सम्मुख

मधुर माँ, दिन में जब हमारे सामने कोई कठिनाई हो और आपसे मिलना या आपसे बात करना सम्भव न हो तो क्या करना चाहिये?

अगर यह बिलकुल सम्भव न हो तो तुम एकदम अकेले, चुपचाप बैठ जाओ, नीरव होने की कोशिश करो, बुलाओ, मुझे इस तरह बुलाओ मानों मैं मौजूद हूँ, मुझे वहाँ बुला लो और पूरी सच्चाई और तटस्थता से अपनी कठिनाई मेरे सामने रखो; और फिर, बिलकुल नीरव रहो, बिलकुल चुपचाप और परिणाम के लिए प्रतीक्षा करो।

और मेरा ख़याल है कि परिणाम आता है। कठिनाई कैसी है उस पर निर्भर करता है।...

जब कठिनाई इस कारण आती है कि सत्ता का एक भाग एक चीज़ चाहता है और दूसरा भाग जानता है कि वह चीज़ नहीं मिलनी चाहिये, तो चीज़ ज़्यादा जटिल हो जाती है, क्योंकि जो भाग चाहता है वह उत्तर में अपनी ही इच्छा को घुसा देने की कोशिश कर सकता है। तो जब तुम बैठो तो पहले तुम्हें उसे इस बात के लिए मनाने से शुरू करना चाहिये कि वह सच्चाई के साथ समर्पण करे, और इसमें तुम सच्ची प्रगति कर सकते हो, तुम कह सकते हो : "अब मैं सचेतन हूँ कि मैं वह चाहता हूँ, लेकिन

अगर इस कामना को छोड़ना ज़रूरी हो तो मैं इसे छोड़ने को तैयार हूँ।" लेकिन तुम्हें यह सिर्फ़ अपने सिर में ही नहीं करना चाहिये, यह चीज़ सच्चाई के साथ की जानी चाहिये, उसके बाद तुम उस तरह आगे बढ़ो जैसे मैंने अभी कहा। तब तुम जान जाओगे—जान जाओगे कि क्या करना चाहिये।

कभी-कभी लिख लेने से ज़्यादा आसानी होती है; तुम कल्पना करो कि मैं उपस्थित हूँ, तब एक काग़ज़ लो, और मुझसे जो कहना चाहते हो वह उस पर लिख लो। कभी-कभी उस चीज़ को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करने का तथ्य ही तुम्हें स्थिति का सच्चा चित्र दे देता है और तुम ज़्यादा आसानी से उत्तर पा सकते हो। यह कई बातों पर निर्भर करता है, कभी-कभी यह ज़रूरी होता है, कभी नहीं भी होता, लेकिन अगर तुम उलझन में हो, एक प्रकार के बवण्डर में हो, या उससे भी बढ़ कर प्राण उमड़-घुमड़ रहा हो, तो अपने-आपको काग़ज़ पर लिखने के लिए बाधित करने का तथ्य ही तुम्हें शान्त कर देता है, इससे शुद्धि का काम शुरू हो जाता है।

वस्तुतः, जब तुम्हें लगे कि तुम किसी-न-किसी तरह के आवेग में फँस गये हो, विशेष रूप से क्रोध के आवेग में, तो तुम्हें यह हमेशा करना चाहिये। अगर तुम अपने लिए यह निश्चित अनुशासन बना लो, कि कुछ करने या बोलने की जगह (क्योंकि बोलना भी एक क्रिया है), आवेग में आकर क्रिया करने की जगह, तुम पीछे हट जाओ और तब जैसा मैंने कहा वैसा करो, चुपचाप बैठ जाओ, एकाग्र होकर और अपने क्रोध को चुपचाप देखो और उसे लिख लो तो जब तक तुम लिखना ख़तम करोगे, तब तक वह चला जायेगा हर हालत में, अधिकतर ऐसा ही होगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ११६-१८

मूर्खता-भरी चीज़ें करना

ऐसे लोग हैं जो मूर्खता-भरी चीजें करते हैं...।

हाँ।

और वे जानते हैं कि वे मूर्खता कर रहे हैं, लेकिन उनका मन उसे न्यायसंगत नहीं ठहराता, कोई सहारा नहीं देता, कोई बहाने नहीं बनाता, कोई सफ़ाई नहीं देता, कोई तर्क नहीं करता। यह कौन-सी स्थिति है?

यह कौन-सी स्थिति है? जो लोग यह जानते हैं कि वे मूर्खता-भरी चीज़ें कर रहे हैं, जो सचेतन हैं, फिर भी उनसे बच नहीं सकते, क्योंकि उनके मन में उन चीज़ों को रोकने का बल नहीं है?...

लेकिन मन में उन्हें रोकने के लिए काफ़ी बल कभी नहीं होता! क्योंकि मन एक ऐसा यन्त्र है जो सब तरह की चीज़ों को सब ओर से देखने के लिए बनाया गया है। तब तुम ऐसे प्रबल संकल्प की आशा कैसे कर सकते हो भला जो आवेग का प्रतिरोध कर सके, जब कि मन पहले इस ओर से देखता है और फिर उस ओर से? और फिर कहता है: "आख़िर, बात ऐसी है, और ऐसी क्यों न हो?" तो फिर तुम्हारा संकल्प कहाँ है?...

जैसा कि मैंने यहाँ कहा है[१], वह हमेशा हर चीज़ को समझाने के लिए, हर चीज़ को न्यायसंगत ठहराने के लिए रास्ता निकाल लेता है और हर चीज़ के लिए प्रशंसनीय कारण बतलाता है। केवल चैत्य पुरुष में ही हस्तक्षेप करने की शक्ति है। अगर तुम्हारे मन का चैत्य के साथ सम्पर्क है, अगर वह चैत्य के प्रभाव को ग्रहण करता है तो वह प्रतिरोध संगठित करने के लिए काफ़ी बलवान् होता है। वह जानता है कि सच्ची चीज़ क्या है और मिथ्या क्या है; और यह जानते हुए कि सत्य क्या है, यदि उसमें सद्भावना हो तो वह प्रतिरोध संगठित करेगा और युद्ध करके विजय लाभ करेगा। लेकिन शर्त यही है: वह चैत्य पुरुष के सम्पर्क में हो।...

यह काम होता तभी है जब तुम यह निश्चय कर लो: "अच्छा, इस बार, मैं कोशिश करूँगा कि मैं इसे नहीं करूँ। मैं इसे नहीं करूँगा। मैं अपनी सारी शक्ति लगा दूँगा और इसे नहीं करूँगा।" अगर तुम्हें ज़रा-सी भी सफलता मिले तो यह बहुत है। कोई बड़ी सफलता नहीं, बस ज़रा-सी सफलता, बहुत आंशिक सफलता: तुम जो करने के लिए आते हो वह कर नहीं पाते; पर यह उत्कण्ठा, यह इच्छा, यह आवेग अब भी हैं। ये तुम्हारे अन्दर चक्कर खाने लगते हैं, लेकिन बाहर तुम प्रतिरोध करते हो:

[१] "इस भौतिक मन की निम्न प्राणिक चेतना और उसकी गतियों के साथ एक प्रकार की मैत्री होती है। जब निम्न प्राण किन्हीं कामनाओं और आवेगों को प्रकट करता है तो अधिकतर भौतिक मन उसकी सहायता के लिए आ जाता है, उन्हें सत्य का आभास देने वाली व्याख्याओं, तर्कों और बहानों के द्वारा न्यायसंगत ठहराता है और उनका समर्थन करता है।" 'प्रश्न और उत्तर १९२९-१९३१' (२६ मई १९२९)

"मैं ऐसा नहीं करूँगा, मैं नहीं हिलूँगा; भले मुझे हाथ-पाँव क्यों न बाँध लेने पड़ें, मैं यह बिलकुल न करूँगा।" यह आंशिक सफलता है—लेकिन यह एक बड़ी विजय है, क्योंकि इसके कारण अगली बार तुम इससे कुछ ज़्यादा कर पाओगे। अर्थात्, अपने उग्र आवेगों को अपने अन्दर बन्द रखने की जगह, तुम उन्हें ज़रा शान्त करना शुरू कर सकते हो; और पहले तुम उन्हें कठिनाई के साथ, धीरे-धीरे शान्त कर सकोगे। वे बहुत समय तक रहेंगे, वे वापस आ जायेंगे, वे तुम्हें कष्ट देंगे, तंग करेंगे, तुम्हारे अन्दर घृणा पैदा करेंगे। यह सब होगा, लेकिन यदि तुम अच्छी तरह प्रतिरोध करो और कहो : "नहीं, मैं यह सब नहीं करूँगा; चाहे जो भी मूल्य चुकाना पड़े, मैं कुछ न करूँगा। मैं चट्टान की तरह रहूँगा," तब थोड़ा-थोड़ा करके, थोड़ा-थोड़ा करके वे चीज़ें कम होने लगेंगी, कम होने लगेंगी। तब दूसरा मनोभाव सीखने का समय आयेगा : "अब मैं चाहता हूँ कि मेरी चेतना इन चीज़ों से ऊपर रहे। अब भी बहुत-से युद्ध होंगे, लेकिन अगर मेरी चेतना इन सबसे ऊपर रहे तो आहिस्ता-आहिस्ता ऐसा समय आयेगा जब यह चीज़ फिर से वापस न आयेगी।" और फिर, एक समय आता है जब तुम अनुभव करते हो कि तुम बिलकुल मुक्त हो गये हो; तुम उसे देखते तक नहीं, और तब मामला ख़तम। इसमें बहुत समय लग सकता है, यह स्थिति जल्दी भी आ सकती है : यह चरित्र-बल और अभीप्सा की सच्चाई पर निर्भर करता है। लेकिन जिन लोगों में थोड़ी-सी भी सच्चाई है, वे भी यदि अपने-आपको इस पद्धति के अधीन कर सकें तो सफल होते हैं। इसमें समय लगता है। वे पहली चीज़ में सफल हो जाते हैं, यानी, इसे व्यक्त न करने में। धरती पर सभी शक्तियाँ अपने-आपको प्रकट करने की ओर प्रवृत्त होती हैं। ये शक्तियाँ अपने-आपको व्यक्त करने के उद्देश्य से आती हैं और अगर तुम बीच में एक बाधा खड़ी कर दो और उन्हें प्रकट करने से इन्कार कर दो तो वे कुछ समय तक बाधा के विरुद्ध टक्करें लेने की कोशिश कर सकती हैं, पर अन्त में वे स्वयं थक जायेंगी और अभिव्यक्त हुए बिना ही लौट जायेंगी और तुम्हें चैन में छोड़ जायेंगी।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २३३-३६

सच्चाई से काम में लग जाओ, देर-सबेर बाधाएँ दूर हो जायेंगी।

श्रीअरविन्द को समर्पण करना

श्रीअरविन्द की सेवा में पूरी सच्चाई के साथ अपना मन अर्पित करने के योग्य होने के लिए क्या यह ज़रूरी नहीं है कि एकाग्रता की शक्ति को बहुत विकसित किया जाये? क्या आप मुझे बतलायेंगी कि इस बहुमूल्य क्षमता को प्रशिक्षित करने के लिए मुझे क्या करना चाहिये?

एक समय निश्चित कर लो जब तुम हर रोज़ शान्त-स्थिर हो सको।

श्रीअरविन्द की कोई एक पुस्तक ले लो। दो-एक वाक्य पढ़ो। तब गहरा अर्थ समझने के लिए नीरव और एकाग्र रहो। काफ़ी गहराई में एकाग्र होने की कोशिश करो ताकि तुम मानसिक नीरवता पा सको, और फिर, जब तक कोई परिणाम न मिल जाये तब तक इसी तरह रोज़ करते रहो।

स्वाभाविक है कि तुम्हें सो न जाना चाहिये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. २२५

तुम्हारे लिए घर और अपने कार्य के बीच साधना करना बिलकुल सम्भव है—बहुतेरे इस तरह करते हैं। आरम्भ में आवश्यकता है—

— श्रीमाँ का अधिकाधिक स्मरण करो,

— प्रत्येक दिन नियत समय पर अपने हृदय में उन पर एकाग्र होओ,

— अगर सम्भव हो तो उनकी कल्पना दिव्य माँ की भाँति करो,

— अपने अन्दर उन्हें अनुभव करने की अभीप्सा करो,

— अपने कर्मों को उन्हें समर्पित कर दो और

— प्रार्थना करो कि अन्दर से वे तुम्हारा पथ-प्रदर्शन कर सकती और तुम्हारी रक्षा कर सकती हैं।

यह एक प्रारम्भिक अवस्था है जिसे चरितार्थ करने में प्रायः बहुत समय लगता है, लेकिन अगर साधक इस पथ पर सच्ची निष्कपटता और दृढ़ता के साथ चलता रहे तो धीरे-धीरे उसकी मानसिकता बदलने लगती है और उसके अन्दर एक नयी चेतना प्रकट हो जाती है जो अपने अन्दर श्रीमाँ की उपस्थिति के प्रति, अपनी प्रकृति और अपने जीवन में उनकी क्रिया के प्रति अधिकाधिक अभिज्ञ होने लगती है या फिर उनकी क्रिया ऐसी आध्यात्मिक अनुभूति प्रदान करती है जो उपलब्धि की ओर द्वार खोल देती है।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १८६ **श्रीअरविन्द**

सच्चाई के पथ पर बाधाएँ

किसी ने कहा है कि अगर तुम योग का द्वार खोलो तो बहुत-सी बाधाएं तुम्हारे सामने आ खड़ी होती हैं। क्या यह सच है?

यह कोई निरपेक्ष नियम नहीं है; और बहुत-कुछ व्यक्ति पर निर्भर करता है। बहुतों के लिए विरोधी परिस्थितियाँ उनकी प्रकृति के कमज़ोर स्थलों की कसौटी बन कर आती हैं। योग का अनिवार्य आधार है, धीरज और समचित्तता; तुम योग-पथ पर स्वतन्त्र रूप से चल सको इससे पहले इनकी स्थापना भली-भाँति हो जानी चाहिये। स्वाभाविक है कि उस दृष्टिकोण से, सभी कठिनाइयाँ ऐसी कसौटियाँ हैं जिन पर तुम्हें खरा उतरना होगा। साथ ही ये उन सीमाओं को तोड़ने के लिए भी ज़रूरी हैं जिन्हें तुम्हारी मानसिक रचनाएँ तुम्हारे चारों ओर बना देती हैं, जो तुम्हें ज्योति और सत्य की ओर खुलने से रोकती हैं।

जब हम अभीप्सा के साथ आध्यात्मिक जीवन के लिए आते हैं, तो क्या विरोधी शक्तियाँ हम पर आक्रमण कर सकती हैं?

बिना अपवाद के, सब पर।

चाहे वे बहुत अच्छी दीखती हों?

कभी-कभी, हाँ। कभी-कभी ये बहुत अधिक भयंकर होती हैं।

लेकिन हम कैसे जान सकते हैं?

ओह! सबसे आसान तरीक़ा यह है कि अगर तुम्हारे गुरु हैं तो उनसे जाकर पूछो। यह सबके बस की बात है। अपने गुरु पर श्रद्धा होना काफ़ी है, जाकर उन्हें खोजो और उनसे पूछ लो। वे तुम्हें बतलायेंगे क्योंकि वे वास्तव में जानते हैं।

अगर तुम्हारे गुरु नहीं हैं, तो यह ज़्यादा कठिन है क्योंकि, ये शक्तियाँ बहुत चतुर होती हैं। वे विभीषिका, दुर्गति, दुष्टता आदि का भाव लेकर नहीं आतीं, क्योंकि तब तो तुम उन्हें तुरन्त पहचान लोगे और उनके झाँसे में नहीं आओगे। साधारणतः वे मित्र के रूप में आती हैं। अगर तुम बहुत सच्चे और निष्कपट हो तो तुम शीघ्र ही कुछ छोटे संकेत देख सकोगे, कुछ ऐसे सुझाव जो तुम्हारे मिथ्याभिमान को सन्तुष्ट करते हैं या तुम्हारे अन्दर सन्देह जगाते हैं या अपने ठीक कर्तव्य-कर्म की ओर से ज़रा अचेतन कर देते हैं—बहुत छोटी-छोटी बातें। अगर तुम सच्चे हो तो उनके आर-पार देख सकते हो, विशेषकर यदि तुम इतने सतर्क हो कि अपने-आपको प्रशंसा द्वारा या अपने स्वाभिमान की सन्तुष्टि को प्रोत्साहित करने वाले प्रयासों द्वारा धोखे में डाले जाने से रोक सको। ऐसी चीज़ें जो तुम्हारे मिथ्याभिमान को ज़रा-सा प्रोत्साहन देती हैं—यह सबसे बढ़ कर निश्चित चिह्न है; कोई ऐसी चीज़ जो तुम्हारे अन्दर यह विचार लाती है : "आख़िर मैं इतना बुरा नहीं हूँ। मैं जो कुछ करता हूँ, भली-भाँति करता हूँ। मेरा प्रयास प्रशंसनीय है, मेरी सच्चाई बेदाग़ है," इत्यादि। तुम अधिकाधिक आत्म-तुष्ट हो जाते हो और तब तुम निश्चित हो सकते हो। लेकिन वहाँ भी हमेशा चीज़ें ऐसा ही रूप नहीं लेतीं। दूसरी चीज़ें भी होती हैं जो व्यक्तियों पर निर्भर करती हैं। कुछ लोगों के लिए इस तरह होता है, कुछ दूसरों में ये बड़प्पन का भाव जगा सकती हैं : "अगर मैं इस तरह चलता चलूँ तो मैं एक बड़ा योगी बन जाऊँगा। मेरे पास बड़ी-बड़ी शक्तियाँ होंगी। मैं बहुत अच्छा काम करूँगा। मैं भगवान् की कैसी अच्छी सेवा करूँगा, वे मुझसे कितने प्रसन्न होंगे!" यह बहुत ख़तरनाक है। इससे ठीक उलटी चीज़ भी हो सकती है : "आख़िर, शायद मैं किसी काम का नहीं हूँ। क्या मेरे प्रयास करने का कोई मूल्य है? इस प्रयास से कुछ होने वाला नहीं है। क्या मैं आध्यात्मिक जीवन के योग्य हूँ? शायद मैं कभी कुछ न कर सकूँगा। मैं आकाश-कुसुम के लोभ में हाथ में आयी चीज़ छोड़े दे रहा हूँ। और आख़िर मैं हूँ क्या? धूल का एक कण। क्या भगवान् को पाने का मेरा प्रयास किसी काम का है? सम्भवतः मैं कुछ भी न पा सकूँगा और मेरा प्रयास बेकार होगा।" यह और भी अधिक ख़तरनाक है। मैं इस तरह के सैकड़ों उदाहरण दे सकती हूँ।

केवल एक चीज़ है जो तुम्हें सचमुच बचा सकती है और वह है

अपने चैत्य पुरुष के साथ सम्पर्क, चाहे वह कितना ही कम क्यों न हो; और उस सम्पर्क की **दृढ़ता** का अनुभव। तब तुम्हारे पास इस व्यक्ति या उस परिस्थिति से जो भी आये उसे तुम उसके सामने रख दो और फिर देखो कि वह ठीक है या नहीं। अगर तुम सन्तुष्ट भी होओ, हर तरह से, अगर तुम अपने-आपसे यह भी कहो: "आख़िर मैंने वह मित्र पा लिया है जिसे मैं पाना चाहता था। मैं अपने जीवन की अच्छी-से-अच्छी स्थिति में हूँ, इत्यादि", तब इसे चैत्य के साथ जो तुम्हारा छोटा-सा सम्पर्क है उसके सामने रखो, तब देखो कि यह अपने चटकीले रंग बनाये रख सकता है या उसमें अचानक ज़रा-सी बेचैनी आ जाती है, बहुत नहीं, कोई शोर मचाने वाली चीज़ नहीं, बस ज़रा-सी बेचैनी। तब तुम्हें यह विश्वास नहीं रहता कि चीज़ वैसी ही है जैसी तुम सोच रहे थे। तब तुम जान लेते हो: हाँ, यह वही मन्द स्वर है जिसे हमेशा सुनना चाहिये। वही सत्य है, अन्य चीज़ें तुम्हें अब और कष्ट न दे सकेंगी।

अगर तुम सच्ची अभीप्सा के साथ आध्यात्मिक जीवन में आओ तो कभी-कभी तुम्हारे ऊपर अप्रिय वस्तुओं की हिमवर्षा होने लगती है। तुम अपने सबसे अच्छे मित्रों के साथ लड़ पड़ते हो, तुम्हारा परिवार तुम्हारी गरदन पकड़ कर घर से बाहर कर देता है, जिसे तुमने सोचा कि मिल गया है, उसे गँवा बैठते हो...। मैं एक आदमी से परिचित थी जो बड़ी अभीप्सा के साथ, ज्ञान तथा योग के लिए लम्बे प्रयास के बाद भारत आया था। यह बहुत पहले की बात है। उन दिनों लोग घड़ी की ज़ंजीर और छल्ले पहना करते थे। इस आदमी के पास एक सोने की पेंसिल थी जो उसकी दादी ने दी थी। यह व्यक्ति उसके साथ इतना अधिक आसक्त था मानों वह दुनिया-भर में सबसे ज़्यादा मूल्यवान् वस्तु हो। वह उसकी ज़ंजीर के साथ बँधी थी। जब वह भारत या लंका के एक ऐसे बन्दरगाह पर उतरा जहाँ जहाज़ से बन्दरगाह तक जाने के लिए छोटी नौका में बैठना पड़ता है, जैसे पॉण्डिचेरी, हिन्दुस्तान के कुछ और बन्दरगाह या कोलम्बो, शायद वह कोलम्बो था, तो इस आदमी को जहाज़ की सीढ़ी से नौका में कूदना पड़ा। उसका पाँव चूक गया। उसने अपने-आपको तो सम्भाल लिया, लेकिन उसके अचानक झटके के कारण वह सोने की पेंसिल समुद्र में गिर कर सीधी गहराइयों में चली गयी। पहले तो उसे बहुत दुःख हुआ, लेकिन

फिर उसने अपने-आपको समझा लिया : "यह भारत का पहला प्रभाव है : अब मैं आसक्तियों से मुक्त हो गया।" बहुत सच्चे लोगों के लिए चीज़ें ऐसा रूप लेती हैं। कष्टों की हिमवर्षा हमेशा सच्चों के लिए होती है। जो लोग सच्चे और निष्कपट नहीं हैं उनके पास चीज़ें उन्हें धोखा देने के लिए बहुत तड़क-भड़क के साथ गहरे रंगों में आती हैं, पर अन्त में उन्हें यह भान करने-योग्य बना देती हैं कि यह उनकी भूल थी! लेकिन जब किसी पर बड़ी कठिनाई आती है तो यह इस बात का प्रमाण है कि उसने निष्कपटता की अमुक अवस्था प्राप्त कर ली है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. १७२-७५

हर एक को संघर्ष करना पड़ता है

इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम इसमें से पार निकल जाओगे—हर एक को ऐसे संघर्षों का सामना करना ही होता है; इनसे पार पाने के लिए आवश्यकता है सच्चाई तथा दृढ़ता की।

ऐसे संघर्षों को निमन्त्रण देने की कोई ज़रूरत नहीं, यह तो मानों यह कहना हुआ कि—आ बैल, मुझे मार! या जब वे आयें तो बस इनसे जूझने के लिए इन्हें स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि ये पलट-पलट कर आते रहते हैं। न इनका स्वागत करो, न इन्हें स्वीकारो, लेकिन जब इनसे बचा न जा सके तो डट कर इनका मुक़ाबला करो—व्यक्ति इनसे पूरी तरह बच कर नहीं रह सकता, विशेषकर साधना के प्रारम्भिक दौर में; लेकिन अगर तुम शान्ति से इनसे कतरा कर निकल सको तो यह अपने-आपमें प्रगति है। शान्त रहो और शान्ति के साथ सच्ची चैत्य अवस्था को वापस बुला लो जब तक कि शान्ति की यह अवस्था सामान्य न बन जाये, जो या तो संघर्ष को निकाल बाहर करे या उसे कम-से-कम कर दे—यही प्रगति का सर्वोत्तम तरीक़ा है।

CWSA खण्ड ३१, पृ. ७४४-४५

ऐसा इसलिए हो रहा है क्योंकि तुम्हारा मन और प्राण दोनों ही सच्चे-निष्कपट बन गये हैं कि प्रहार शक्तिशाली रूप में आ रहा है और यह चीज़ तुम्हें असामान्य लग रही है। पहले, चूँकि तुम बीच-बीच में अपनी कामना

इत्यादि के सामने झुक जाते थे इसलिए वह भाग जो इन प्रहारों को नहीं चाहता था, बहुत तीव्रता के साथ अपने आग्रह पर दृढ़ नहीं बना रहता था और तब इसे तुम्हारे प्राणिक स्वभाव के दूसरे भाग भी नहीं समझ पाते थे। अब यह तुम्हारी मानसिक, चैत्य तथा उच्चतर प्राणिक सत्ता है जो इन प्रहारों से पूरी तरह से अछूती रहती है। बस वह भौतिक-प्राणिक हिस्सा है जिसके अन्दर अब भी कामना बसी हुई है और बीच-बीच में उसी भाग को विरोधी शक्तियाँ उकसाती रहती हैं ताकि कामना सक्रिय हो जाये। और यही वह कामना थी जिसकी वजह से कुछ दिन पहले तुम दुःख भोग रहे थे। निम्न प्राण की इस कामना से तुम्हें पूरी तरह से छुटकारा पाना चाहिये।
CWSA खण्ड ३१, पृ. २६३

जब-जब स्वभाव की किसी चीज़ पर विजय पानी होती है, तब-तब हमेशा ऐसी घटनाएँ खिंची चली आती हैं जो साधक को तब तक कसौटी पर कसती रहती हैं जब तक वह उनको जीत नहीं लेता और उनसे मुक्त नहीं हो जाता। सचमुच यह ऐसी चीज़ है जो प्रायः घटित होती है, ख़ासकर जब व्यक्ति इनको पार करने के अपने प्रयास में सच्चा होता है। हमेशा व्यक्ति को यह नहीं पता चलता कि क्या ये विरोधी शक्तियाँ हैं जो साधक के निश्चय को तोड़ती या उसे कसौटी पर कसती हैं (क्योंकि ये शक्तियाँ यह दावा करती हैं कि ऐसा करने का उन्हें अधिकार है) या फिर, हम यह कहें कि ये भगवान् ही हैं जो यह करते हैं ताकि प्रगति को तेज़ करने के लिए दबाव डाला जाये या उस पर इसलिए उनका दृढ़ाग्रह होता है कि जिस परिवर्तन की तुम अभीप्सा कर रहे हो उसे उसकी सत्यता, सूक्ष्मता तथा पूर्णता में तुम प्राप्त कर सको। शायद, यदि व्यक्ति इस दूसरे दृष्टिकोण को अपना सके तो उसका सर्वोत्तम भला होगा।
CWSA खण्ड ३१, पृ. ६५३ **श्रीअरविन्द**

अगर तुम चिन्तित, दुःखी या हतोत्साह हो

अहं नागो'व सङ्गामे चापतो पतितं सरं।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो।।१।।

जैसे युद्ध में हाथी धनुष से गिरे शर को (सहन करता है) वैसे ही मैं कटु वाक्यों को सहन कर लूँगा। (संसार में तो) दुःशील आदमी ही अधिक हैं।

यह पहला पद एक बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह है: युद्ध में अच्छी तरह प्रशिक्षित हाथी जैसे ही उसे एक तीर लगता है, भागने नहीं लगता। वह आगे बढ़ता रहता है और अपने वीरता-भरे प्रतिरोध के मनोभाव को बदले बिना दुःख सहता रहता है। जो सत्य मार्ग का अनुसरण करना चाहते हैं वे साधारणतया सब दुर्भावनाओं के आक्रमण के पात्र होंगे, जो न केवल समझते ही नहीं, बल्कि जो कुछ नहीं समझते उससे आमतौर पर नफ़रत भी करते हैं।

अगर दुर्भावना से भरे लोग तुम्हारे बारे में बेहूदा बातें करें और तुम उनसे चिन्तित हो जाओ, दुःखी हो जाओ या यहाँ तक कि निराश हो जाओ तो तुम मार्ग पर बहुत आगे न बढ़ पाओगे। और जब ये चीज़ें तुम्हारे पास आती हैं तो इसलिए नहीं कि तुम अभागे हो या तुम्हारा भाग्य सुखमय नहीं है; बल्कि, इसके विपरीत, इसलिए कि दिव्य 'चेतना' और दिव्य 'कृपा' तुम्हारे निश्चय को गम्भीरता से लेती हैं और परिस्थितियों को रास्ते के रोड़े बनने देती हैं, यह देखने के लिए कि क्या तुम्हारा निश्चय सच्चा है और क्या तुम मुसीबतों का सामना करने के लिए काफ़ी मज़बूत हो।

इसलिए, अगर कोई तुम्हारा मज़ाक उड़ाये या कुछ ऐसी बात कहे जो बहुत सद्भावनापूर्ण न हो तो करने-लायक़ सबसे पहली चीज़ यह है कि अपने अन्दर देखो कि कौन-सी ऐसी दुर्बलता या अपूर्णता है जिसने इस तरह की वस्तु को आने दिया। तुम जिसे अपना उचित मूल्य समझते हो लोग उसकी प्रशंसा नहीं करते—इससे निराश न होओ, क्रोध न करो, दुःखी मत होओ। इसके बदले तुम दिव्य 'कृपा' का आभार मानो कि उसने तुम्हारी उस दुर्बलता या अपूर्णता या विकृति पर उँगली रख दी है जिसे तुम्हें ठीक करना है।

अतः, दुःखी होने की जगह, तुम पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो सकते हो और लोग तुम्हें जो हानि पहुँचाना चाहते थे उसके स्थान पर लाभ, एक बड़ा लाभ उठा सकते हो।

इसके अतिरिक्त, यदि तुम सचमुच मार्ग का अनुसरण करना चाहते

हो और योग करना चाहते हो तो वह इसलिए नहीं करना चाहिये कि लोग तुम्हारी प्रशंसा करें और तुम्हें सम्मान दें, बल्कि इसलिए कि वह तुम्हारी सत्ता की सर्वप्रथम आवश्यकता है और उसके बिना तुम सुखी नहीं रह सकते। लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं या नहीं करते, इसका किसी तरह का कोई महत्त्व नहीं है। तुम शुरू से ही अपने-आपसे कह सकते हो कि तुम सामान्य मनुष्य से जितनी दूर जाओगे, सामान्य होने के ढंग से अपरिचित होओगे, एकदम स्वाभाविक रूप से उतनी ही तुम्हारी प्रशंसा कम होगी, क्योंकि लोग तुम्हें समझ न पायेंगे। और मैं फिर दोहराती हूँ, उसका किसी तरह का कोई महत्त्व नहीं है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ३१७, ३२०-२१

सच्ची सच्चाई है राह पर आगे बढ़ते जाना, क्योंकि तुम उसके अतिरिक्त कुछ कर ही नहीं सकते; अपने-आपको दिव्य जीवन के लिए समर्पित करना, क्योंकि उसके अतिरिक्त तुम और कुछ कर ही नहीं सकते; सच्ची सच्चाई है अपनी सत्ता को परिवर्तित करने का प्रयत्न करना और प्रकाश की ओर उठना, क्योंकि उसके अतिरिक्त तुम और कुछ कर ही नहीं सकते, क्योंकि वही तुम्हारे जीवन का एकमात्र उद्देश्य है।

जब हालत ऐसी हो तब तुम निश्चित हो सकते हो कि तुम ठीक राह पर हो। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ३, पृ. ३२१

*

श्रीमाँ की कृपा के योग्य होने के लिए केवल एक ही चीज़ की आवश्यकता है—वह है पूर्ण सच्चाई और सम्पूर्ण सत्ता में उनके प्रति सच्चा उद्घाटन।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १६४ **श्रीअरविन्द**

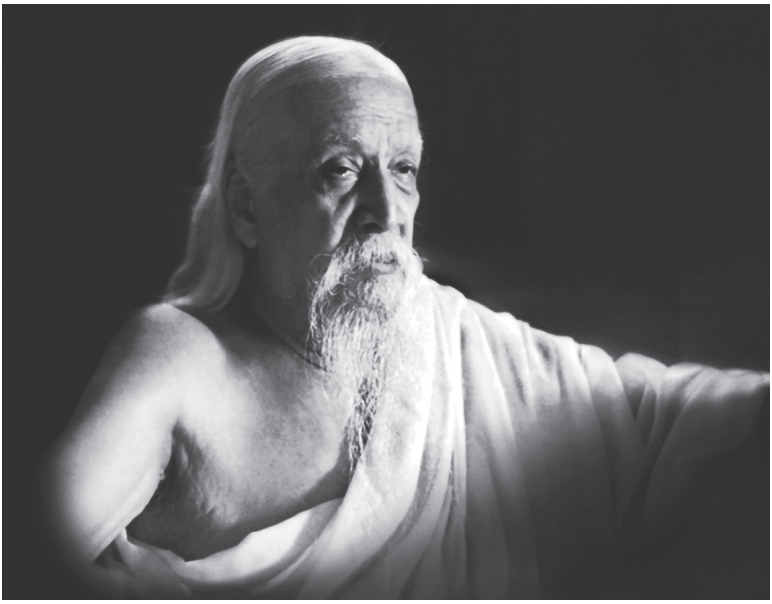

एक सच्चे-निष्कपट
हृदय का मूल्य संसार की
सभी असाधारण शक्तियों से
बढ़ कर है।

CWSA खण्ड २८, पृ. ५७७ — *श्रीअरविन्द*

कपट की परछाइयाँ

मैं सच्चाई के साथ अनुभव करता हूँ कि मैं और कुछ नहीं, केवल 'भगवान्' को चाहता हूँ। लेकिन जब मेरा सम्पर्क दूसरों के साथ होता है, जब मैं ऐसी चीज़ों में व्यस्त रहता हूँ जिनका कोई मूल्य नहीं, तो मैं स्वभावतः 'भगवान्' को, अपने एकमात्र लक्ष्य को, भूल जाता हूँ। क्या यह कपट है? अगर नहीं, तो इसका क्या अर्थ है?

हाँ, यह सत्ता का कपट है, जिसमें एक भाग 'भगवान्' को चाहता है और दूसरा किसी और वस्तु को।

अज्ञान और मूर्खता के कारण सत्ता में सच्चाई का अभाव होता है। लेकिन, दृढ़ संकल्प और 'भागवत कृपा' में पूर्ण विश्वास द्वारा व्यक्ति इस कपट को दूर कर सकता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. ७४-७५

एक पत्र में श्रीअरविन्द कहते हैं:

"उचित रूप से निवेदित की गयी हर प्रार्थना हमें भगवान् के अधिक नज़दीक लाती है और उनके साथ ठीक-ठीक सम्बन्ध स्थापित करती है।"

इस पत्र में "उचित रूप से निवेदित की गयी" का मतलब क्या है, कृपया आप स्पष्ट करेंगी?

विनय और सच्चाई के साथ की गयी।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सौदेबाज़ी का सारा भाव कपट है जो प्रार्थना का सारा मूल्य हर लेता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. २३२

सत्ता का हर विभाजन कपट है।

सबसे बड़ा कपट है अपने शरीर और अपनी सत्ता के सत्य के बीच एक खाई खोदना।

जब एक खाई तुम्हारी सच्ची सत्ता को तुम्हारी भौतिक सत्ता से अलग करती है तो 'प्रकृति' उसे तुरन्त सब प्रकार के विरोधी सुझावों से भर देती है। उनमें सबसे अधिक विकट है भय, और सबसे अधिक घातक है, सन्देह।

कहीं भी, किसी चीज़ को अपनी सत्ता के सत्य का निषेध न करने दो—यही निष्कपटता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. ७६

अधिकांश मनुष्यों में अपने-आपको धोखा देने की चिरकालिक आदत होती है। वे अपने-आपको सैकड़ों भिन्न-भिन्न तरीक़ों से धोखा देते हैं जिनमें से हर एक दूसरे से अधिक धूर्ततापूर्ण चालाकी से भरा और सूक्ष्म होता है और इसमें दोनों मिले रहते हैं—पूरी सरलता और पूर्ण कपट।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. ७६-७७

मनुष्य के अंदर पूर्ण पारदर्शक निष्कपटता होनी चाहिये। निष्कपटता का अभाव ही उन वर्तमान कठिनाइयों का कारण है जिनका हमें सामना करना पड़ता है। कपट सब मनुष्यों में है। शायद पृथ्वी पर सौ मनुष्य ही ऐसे हों जो पूर्ण रूप से निष्कपट हैं। स्वयं मनुष्य की प्रकृति ही उसे कपटी बना देती है—यह बहुत पेचीदा चीज़ है, क्योंकि वह निरन्तर अपने-आपको धोखा देता है, अपने-आपसे सत्य को छिपाता है, अपने लिए बहाने बना लेता है। ...

निष्कपट होना मुश्किल है, लेकिन फिर भी व्यक्ति कम-से-कम मानसिक रूप में तो निष्कपट हो सकता है; ओरोवीलवासियों से इसी चीज़ की अपेक्षा तो की ही जा सकती है। शक्ति इस तरह मौजूद है जैसे पहले कभी नहीं रही थी; मनुष्य का कपट उसे नीचे उतरने देने से, उसका अनुभव करने से रोकता है। संसार मिथ्यात्व में जीता है, अब तक मनुष्यों के सभी पारस्परिक सम्बन्ध मिथ्यात्व और छल पर आधारित हैं।... पारदर्शक निष्कपटता ही मनुष्यों और राष्ट्रों के बीच रूपान्तरित जगत् को ला सकती है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. २९०-९१

अगर कोई तुम्हें दोष दिखाये तो मानों तुम्हें कोई ख़ज़ाना दिखा रहा है;

यानी, हर बार जब हम अपने अन्दर दोष, अक्षमताएँ, समझ की कमियाँ, कमजोरियाँ, कपट और वे सब चीज़ें देखें जो हमें प्रगति करने से रोकती हैं तो मानों हम एक अद्‌भुत ख़ज़ाना पा जाते हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २४१-४२

मैं अपनी एक कठिनाई को जीतना चाहता हूँ : जब मैं अपने अन्दर दोष या दुर्बलताएँ देखता हूँ तो मेरे अन्दर कोई चीज़ उन्हें उचित ठहराने की कोशिश करती है या मुझे उनकी ओर ध्यान देने से रोकती है।

यह "कोई चीज़" अज्ञानमय आत्मसम्मान का कपट है जिसने अभी तक यह नहीं समझा है कि अपने दोषों को इस आशा से छिपाने की अपेक्षा कि वे दिखायी न देंगे, उन्हें ठीक करने के लिए पहचानना ज़्यादा उच्च और उदात्त है।

जैसा कि सभी मनोवैज्ञानिक समस्याओं में होता है, यहाँ भी निष्कपटता, सम्पूर्ण और दृढ़प्रतिज्ञ निष्कपटता ही सच्चा उपचार है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ४१०

मनुष्य सर्वदा मिश्रित होता है और उसकी प्रकृति में गुण और दोष एक साथ इस प्रकार मिले-जुले होते हैं कि उन्हें अलग करना प्रायः असम्भव होता है। मनुष्य जो कुछ होना चाहता है अथवा दूसरे उसमें जो कुछ देखना चाहते हैं अथवा कभी-कभी वह अपनी प्रकृति के एक भाग में जो कुछ होता है या किसी विशेष सम्पर्क में जो कुछ होता है उससे वह वास्तविक रूप में या अन्य सम्पर्कों में अथवा अपनी प्रकृति के दूसरे भाग में बहुत भिन्न हो सकता है। पूर्ण रूप से सच्चा, सीधा रह कर उद्‌घाटित होना मानव-प्रकृति के लिए कोई आसान उपलब्धि नहीं है। सच पूछा जाये तो केवल आध्यात्मिक प्रयास के द्वारा ही कोई इसे उपलब्ध कर सकता है—और वैसा प्रयास करने के लिए आवश्यकता होती है कठोर अन्तर्निरीक्षणात्मक आत्मदर्शन की शक्ति की, निर्दय होकर अपने अन्दर खोजने और छान-बीन करने की शक्ति की, जिसे पाने में बहुत से साधक और योगी भी समर्थ

नहीं होते। वास्तव में एकमात्र आलोकदायिनी भागवती कृपा-शक्ति ही साधक के सम्मुख उसका स्वरूप उद्घाटित करती और उसमें जो कुछ दोषपूर्ण है उसे रूपान्तरित करती है और तभी मनुष्य में वैसा करने की शक्ति आती है। और उस समय भी ऐसा केवल तभी सम्भव होता है जब साधक स्वयं अपनी अनुमति देता और भागवत क्रिया के लिए सम्पूर्ण रूप से अपने-आपको दे देता है।

तुम अपने स्वभाव के कपट की बात कर रहे हो। अगर कपट से यह मतलब है कि सत्ता का कोई भाग तुम्हारे अन्दर के उच्चतम प्रकाश के अनुसार जीने के लिए अनिच्छुक है या आन्तरिक सत्ता को बाहरी सत्ता के समान बनाना चाहता है, तब यह भाग हर चीज़ में हमेशा कपटी रहेगा। एकमात्र तरीक़ा है कि तुम आन्तरिक सत्ता पर ज़ोर दो और उसे तब तक चैत्य तथा आध्यात्मिक चेतना में विकसित करते रहो जब तक वह चेतना नीचे उसमें न उतर आये और तब वह बाहरी सत्ता के अन्धकार को भी धकेल बाहर कर देगी।

CWSA खण्ड २९, पृ. ५१, ५२

जो लोग उन्माद में जा गिरते हैं वे सच्चा स्पर्श खो बैठते और ग़लत सम्पर्क में जा गिरते हैं। इसका कारण या तो कोई अशुद्धि और अनाध्यात्मिक कामना होती है कि जिज्ञासु कोई ग़लत रास्ता ले लेता है या उसके अन्दर कोई कपट, अहंकार और मिथ्या आत्माभिमान होता है अथवा उसके मस्तिष्क या स्नायविक-तन्त्र में किसी तरह की कोई दुर्बलता होती है जो उस 'शक्ति' को सह नहीं सकती जिसे जिज्ञासु ने अपने अन्दर उतारने के लिए बुलाया है।

सबसे सुरक्षित तरीक़ा है कि ऐसे किसी के पथ-प्रदर्शन का अनुसरण करो जो स्वयं इस पथ पर प्रभुत्व पा चुका हो। केवल उसी पथ-प्रदर्शन का स्पष्टता और सच्चाई के साथ अनुकरण करो; अपने मन, उसके विचार और उसकी स्वैर कल्पनाओं को बिलकुल हस्तक्षेप न करने दो। यह जोड़ने की आवश्यकता नहीं कि वह सच्चा मार्ग-दर्शन हो, किसी नौसिखिये या ढोंगी का न हो। CWSA खण्ड ३२, पृ. ८१०

पूरी तरह सच्चा कैसे बनें

हम उस दिन को कैसे जल्दी ला सकते हैं जब सारी सत्ता कह सके, "मैं आपका हूँ, केवल आपका?"

दो क्रियाएँ हैं जो अभ्यास में एक बन जाती हैं :

१. उस लक्ष्य को **कभी न भूलो** जिसे तुम प्राप्त करना चाहते हो।

२. अपनी सत्ता के किसी भी भाग को या उसकी किसी भी गतिविधि को अपनी अभीप्सा का विरोध न करने दो।

इसके लिए यह भी ज़रूरी है कि अपनी रातों के बारे में सचेतन होओ, क्योंकि बहुत बार रात की क्रियाएँ दिन की अभीप्सा का विरोध करती हैं और उसके काम को व्यर्थ कर देती हैं।

जागरूकता, सच्चाई, प्रयास का सातत्य—और भागवत कृपा बाक़ी सब कुछ कर देगी।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ४२६

इस बात का ख़याल रखो कि अगर तुमने कुछ बुरा काम किया है, अगर तुमने कोई ऐसा काम किया जिसके बारे में तुमको मालूम था कि नहीं करना चाहिये; उदाहरण के लिए, तुम अपने-आपसे कहते हो : "माताजी तो जानती ही हैं, उनसे कहने की कोई ज़रूरत नहीं," तो तुम उसे अपने अन्दर डाल लेते हो। तुम उस पर बड़ी सावधानी से दरवाज़ा बन्द कर देते हो, और फिर उसे अपने हृदय में या कहीं और सँजोए रखते हो। इसके विपरीत, अगर तुम उसका विचार तक न करो... तुम्हें बेचैनी होती है, कोई चीज़ अन्दर घुमड़ती रहती है, वह प्रिय नहीं है... "अच्छा, मैं माताजी को इसके बारे में बताने वाला हूँ।" शुरू करते वक़्त बहुत बड़ा प्रयास करना पड़ता है, है न? गले में कुछ अटकने लगता है, जीभ सूख जाती है, और फिर शब्द ढूँढ़ना कितना मुश्किल हो जाता है... सचमुच, पता नहीं लगता कि कैसे क्या किया जाये, है न! लेकिन अब तुम संकल्प कर चुके हो, तुम बहुत प्रयास करते हो : तुम शब्दों को एक-एक करके बाहर निकालते हो, इस तरह, बहुत मेहनत के साथ आख़िर कह देते हो, और

यथासम्भव ठीक-ठीक कहते हो। मेरे बच्चे, उससे एक द्वार खुल जाता है, इतना बड़ा, और मैं सीधे चैत्य पुरुष में प्रवेश कर सकती हूँ, बस, तुमने जो सच्चाई के साथ प्रयास किया है उसी में से होकर। और तब, जब मैं प्रवेश करती हूँ तो अन्दर सारा आवश्यक प्रकाश, सारी शक्ति, सारी इच्छा-शक्ति, सारी चेतना, सारा संकल्प उँडेल देती हूँ ताकि जो किया है उसे दोबारा न कर पाओ। जिस प्रकार प्याले में ज़्यादा डालने से वह छलक उठता है, उसी प्रकार बहुत कुछ छलक कर गिर जाता है, लेकिन फिर भी थोड़ा-बहुत बच रहता है, और यह थोड़ा-बहुत ही काम करता है। और अगर तुम इस प्रयास को बार-बार करो, जब तक कि तुम यह अनुभव न करने लगो कि—हाँ, मेरे पास कहने के लिए कुछ नहीं है, क्योंकि अब छिपाने के लिए और कुछ नहीं बचा—तब सब कुछ बहुत अच्छा हो जाता है। तुमने बहुत प्रगति कर ली है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. २२७-२८

प्रगति की प्रक्रिया

मधुर माँ, जैसे मानसिक और शारीरिक-शिक्षा के लिए विधिवत् क्रम होता है, क्या श्रीअरविन्द के योग की ओर प्रगति करने की इसी तरह की कोई विधि नहीं है? वह व्यक्ति-व्यक्ति के लिए अलग होनी चाहिये। क्या आप मेरे लिए एक-एक क़दम का कार्यक्रम नहीं बना सकतीं जिसका मैं रोज़ अनुसरण करूँ?

शारीरिक, प्राणिक और मानसिक विकास के लिए एक बँधे हुए कार्यक्रम की यान्त्रिक नियमितता ज़रूरी है; परन्तु इस यान्त्रिक कठोरता का आध्यात्मिक विकास पर नहीं के बराबर या बहुत ही कम प्रभाव होता है जिसमें सम्पूर्ण सच्चाई या निष्कपटता का सहज भाव अनिवार्य है।

श्रीअरविन्द ने इस विषय में बहुत स्पष्ट रूप से लिखा है और उन्होंने जो लिखा है वह उनकी 'योग-समन्वय' पुस्तक में छपा भी है।

फिर भी, मार्ग पर चलने के लिए आरम्भिक सहायता के रूप में मैं तुमसे कह सकती हूँ : १.सवेरे उठ कर, दिन आरम्भ करने से पहले, भगवान् के प्रति दिन का उत्सर्ग करना अच्छा है, तुम जो कुछ सोचते हो,

तुम जो कुछ हो, तुम जो कुछ करोगे उस सबका उत्सर्ग; २. और रात को सोने से पहले, ज़्यादा अच्छा है कि सारे दिन पर नज़र डाल लो, उन अवसरों की ओर ध्यान दो जब तुम अपना और अपनी समस्त क्रियाओं का भगवान् के प्रति उत्सर्ग करना भूल गये या उसकी अवहेलना की, और यह अभीप्सा करो कि ये भूलें फिर से न होने पायें।

यह कम-से-कम है, बहुत ही छोटा-सा आरम्भ—और इसे तुम्हारे समर्पण की वृद्धि के साथ-साथ बढ़ना चाहिये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ३५७-५८

उच्चतम आदर्श के साथ सामञ्जस्य में रहना

जब तुम पूर्णतः सच्चे होते हो तो तुम अपनी सत्ता के उच्चतम आदर्श के साथ, अपनी सत्ता के सत्य के साथ समस्वर होकर जीवन बिताने का सतत प्रयत्न करते हो। प्रत्येक मुहूर्त, तुम जो कुछ सोचते, जो कुछ अनुभव करते और जो कुछ करते हो उस सबमें, यथासम्भव समग्र रूप में, यथासम्भव पूर्ण रूप से, तुम अपने-आपको उच्चतम आदर्श के साथ अथवा, यदि उसके विषय में सचेतन हो तो, अपनी सत्ता के सत्य के साथ समस्वर बनाते हो—तब तुम यथार्थ सच्चाई को प्राप्त करते हो। और, यदि तुम वैसे हो, यदि तुम अहंकारजन्य उद्देश्यों से या व्यक्तिगत कारणों से कार्य नहीं करते, यदि तुम अपने आन्तरिक सत्य के द्वारा परिचालित होकर कार्य करते हो, अर्थात्, यदि तुम पूर्णतः सच्चे हो तो, चाहे सारा जगत् तुम्हारा मूल्यांकन किसी भी ढंग से क्यों न करे, तुम्हारे लिए कोई फ़र्क नहीं पड़ता। पूर्ण सच्चाई की इस अवस्था में तुम्हें अच्छा प्रतीत होने की अथवा दूसरों के द्वारा समर्थित होने की कोई आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि जब तुम अपनी सत्य चेतना के साथ समस्वर होते हो तो तुम सबसे पहली चीज़ यह अनुभव करते हो कि तुम इस बात की परवाह नहीं करते कि तुम कैसे दीखते हो। चाहे तुम ऐसे दीखो या वैसे, चाहे तुम उदासीन, तटस्थ, निर्लिप्त, गर्वित प्रतीत होओ, इस सबका कोई महत्त्व नहीं, बशर्ते कि, मैं इसे फिर दोहरा दूँ, तुम पूर्ण रूप से सच्चे होओ। अर्थात्, तुम कभी यह न भूलो कि तुम अपने आन्तरिक, केन्द्रीय सत्य को उपलब्ध करने के लिए ही जीते हो। **'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ४, पृ. २०-२१

दैनन्दिनी

नवम्बर

१. निश्चय ही हम ऐसे काल में नहीं जी रहे जब मनुष्यों को अपने ही साधनों पर छोड़ दिया गया हो।
भगवान् ने उन्हें प्रबुद्ध करने के लिए अपनी चेतना को नीचे भेजा है। जो भी उससे लाभ उठा सकते हों उन्हें इससे लाभ उठाना चाहिये।

२. समस्त विक्षोभ के बावजूद सत्य की विजय होगी।

३. योग करने के लिए जो चीज़ें प्राप्त करना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है उनमें से एक है भूतकाल के साथ आसक्ति से पिण्ड छुड़ाना।

४. वास्तव में भूतकाल को भूल जाना और सोचने की आदत से पिण्ड छुड़ाना कठिन काम है और उसके लिए कठोर "तपस्या" की ज़रूरत होती है। लेकिन अगर तुम्हें भागवत कृपा पर श्रद्धा है और तुम पूरे हृदय से उसके लिए याचना करो तो तुम ज़्यादा आसानी से सफल होगे।

५. यह बात बहुत सच है कि भौतिक चीज़ों के अन्दर एक चेतना होती है जो अनुभव करती है, सावधानी को प्रत्युत्तर देती है, असावधानी के साथ रख-रखाव और बुरी तरह से उपयोग के प्रति संवेदनशील होती है। इस बात को जानना, इसका अनुभव करना और इनके बारे में सावधान रहना सीखना, यह चेतना की एक महान् प्रगति है।

६. कष्टों से छुटकारा पाने के लिए भी मनुष्य को चेतना के उच्चतर स्तर तक उठना होगा और अपने अज्ञान, अपनी सीमाओं और स्वार्थपरता से ऊपर उठना होगा।

७. जब तुम भगवान् के लिए कार्य करो तो विस्तृत कार्य को लक्ष्य बनाने की अपेक्षा, जो करो उसे पूर्णता से करना कहीं अधिक अच्छा है।

८. तर्क-बुद्धि हमें यह सिखाती है कि जिस चीज़ से बचा नहीं जा सकता उससे डरना मूर्खता है। उपाय एक ही है, वह यह कि दिन-प्रतिदिन, क्षण-प्रतिक्षण मनुष्य अपना अच्छे-से-अच्छा करे और इसकी चिन्ता

न करे कि आगे क्या होगा।

९. भागवत चेतना हमारी सत्ता के भागों पर धीरज के साथ कार्य करती है ताकि उसमें जो कुछ पूर्णता पाने में समर्थ है उसे पूर्ण बनाये, उन्नत करे तथा जो कुछ अन्धकारमय तथा अपूर्ण है उसे बदल दे।

१०. सरल और शान्त हृदय और स्थिर मन के साथ अपना काम जारी रखो। अभीप्सा आवश्यकता के अनुसार धीरे-धीरे आयेगी।

११. तुम बाहर की ओर क्रिया करते हो और सब कुछ कृत्रिम, कठोर, सूखा, ग़लत, मिथ्या, हाँ, कृत्रिम हो जाता है। तुम अन्दर की ओर क्रिया करते हो तब सब कुछ विशाल, शान्त, आलोकमय, प्रशान्त, असीम और आनन्दमय हो जाता है।

१२. जब तक तुम कड़ी मेहनत न करो, तुम शक्ति नहीं पाते क्योंकि उस हालत में तुम्हें उसकी ज़रूरत नहीं होती और तुम उसके अधिकारी नहीं होते। तुम्हें शक्ति तभी मिलती है जब तुम उसका उपयोग करो।

१३. अध्यवसाय वह धैर्य है जो प्रस्तुत और तत्पर है और कभी चुपचाप नहीं बैठता।

१४. तुम्हारे अहंकार की आदत है कि अगर ज़रा-सी चीज़ भी उसे नाख़ुश कर दे तो वह तुम्हारी सत्ता के दरवाज़े अक्खड़, अविश्वासी की दुर्भावना के लिए खोल देता है। वह सभी पवित्र और सुन्दर चीज़ों पर कीचड़ और गन्दगी फेंकता है, विशेषकर तुम्हारी अन्तरात्मा की अभीप्सा और भागवत कृपा से मिलने वाली सहायता पर।

१५. बहुत अधिक बोलने से व्यक्ति बुद्धिमान् नहीं बनता; व्यक्ति तभी बुद्धिमान् कहा जाता है जब वह क्षमाशील, शत्रुहीन और भयहीन हो।

१६. अपने सबसे सुन्दर सपनों को सिद्ध करने से अच्छा और कुछ नहीं है और, कोई और चीज़ हमें इससे ज़्यादा मज़बूत और सुखी नहीं बना सकती।

१७. इस बात की परम आवश्यकता है कि व्यक्ति जो कुछ करे उसे पूरी सच्चाई, पूरी ईमानदारी और कार्य के गौरव की भावना के साथ करे ताकि जैसा उसे होना चाहिये वैसा किया जा सके।

१८. भागवत विश्व-जननी ने धरती पर नज़र डाली है और उसे आशीर्वाद दिया है।

१९. जब भौतिक जगत् भागवत भव्यता को अभिव्यक्त करेगा तब सब कुछ अद्‌भुत हो जायेगा।

२०. तुम ध्यान द्वारा प्रगति कर सकते हो, लेकिन अगर काम उचित भाव से किया जाये तो उसके द्वारा दसगुनी प्रगति कर सकते हो।

२१. अवतरण सभी कठिनाइयों पर विजय पा लेगा क्योंकि अवतरण का अर्थ ही है सभी कठिनाइयों पर विजय।

२२. जो कुछ नया हो, रूढ़िवादी उसका विरोध करेंगे ही। अगर हम इस विरोध के आगे झुक जायें तो संसार एक क़दम आगे न बढ़ेगा।

२३. तुम्हें अपने-आपको विशाल बनाना चाहिये, दरवाज़े खोलने चाहियें। उसके लिए सबसे अच्छा तरीक़ा है अपने ऊपर एकाग्र होने की जगह तुम जो कुछ करते हो उसी पर एकाग्र होओ।

२४. तुम्हें पानी की बूँद के बारे में पता है न जो चट्टान पर गिरती है और अन्त में वह उसमें दरार पैदा कर देती है, वह चट्टान को ऊपर से नीचे तक काट देती है। तुम्हारी अभीप्सा भी पानी की एक बूँद है जो गिरने की जगह ऊपर उठती है।

२५. भागवत कार्य के लिए अपने उत्सर्ग में पूरी तरह **सच्चे बनो**। यह तुम्हारे बल और तुम्हारी सफलता को आश्वासन देगा।

२६. ऐसा कोई भी मानव या अतिमानव-क्षेत्र नहीं है जिसकी कुञ्जी एकाग्रता की शक्ति में नहीं है।

२७. भय दासता है, कार्य स्वतन्त्रता है, साहस विजय है।

२८. सुन्दरता भौतिक में भगवान् की विशेष अभिव्यक्ति है, जैसे ज्ञान मन में, प्रेम हृदय में और शक्ति प्राण में है। अतिमानसिक सुन्दरता भौतिक में प्रकट होने वाली उच्चतम दिव्य सुन्दरता है।

२९. पूरी तरह विनयशील बनो—अर्थात्, तुम जो हो और तुम्हें जो होना चाहिये उन दोनों के बीच की दूरी को जानो। अपने अनगढ़ भौतिक मन को यह न सोचने दो कि वह जानता है जब कि वह नहीं जानता, कि वह मूल्यांकन कर सकता है जब कि कर नहीं सकता।

३०. मैं न भक्त हूँ, न ज्ञानी और न प्रभु के लिए कार्यकर्ता हूँ; तब मैं क्या हूँ? अपने स्वामी के हाथों का उपकरण हूँ, दिव्य गोपाल द्वारा बजायी गयी बाँसुरी हूँ, प्रभु की साँस द्वारा उड़ाया गया वृक्ष का पत्ता हूँ।

'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'

भगवद्गीता के विषय में

(२)

भाईजी, एक और प्रश्न, आख़िर कौरव और पाण्डव भाई ही तो थे। आप क्षत्रियों के विश्वास, उनकी नीति आदि के बारे में क्या कहते हैं? दूसरे पक्ष के उन्हीं विश्वासों और नीतिवालों को क्यों रोका जाये?...

नवजात—देखो, दूसरा पक्ष, यानी कौरव, उसी नीति पर विश्वास नहीं करते। दुर्योधन का एक वक्तव्य है जो बतलाता है कि कैसे यह जानते हुए भी कि उचित क्या है और क्या नहीं, प्रकृति मनुष्य को ग़लत चीज़ करने के लिए बाधित करती है। वह कहता है—

"जानामि धर्म न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्म न च मे निवृत्तिः।"

—मैं जानता हूँ कि धर्म क्या है, लेकिन मेरी वह करने की प्रवृत्ति नहीं है, मैं जानता हूँ कि अधर्म क्या है, लेकिन मैं उसे करने से पीछे नहीं हटता।

तो ऐसे लोग होते हैं जो प्रकृति से ही ऐसे होते हैं, जैसे रावण। रावण बहुत शक्तिशाली और तपस्वी था, वह अपनी इच्छा-शक्ति से ही पहाड़ों को हिला सकता था, तो ऐसा आदमी सीता-हरण के लिए क्यों प्रवृत्त हुआ? जगत् में भगवान् का खेल चलता रहता है जिसमें वे किसी को दुष्ट की भूमिका दे देते हैं।

इसके पीछे क्या प्रयोजन है?

नवजात—विश्व का महान् प्रयोजन है—भगवान् को अभिव्यक्त करना। भगवान् में सब कुछ प्रच्छन्न है, सभी ध्वनियाँ, सभी रंग, सभी स्वभाव, सब कुछ प्रच्छन्न है।

लेकिन भगवान् में कोई चीज़ बुरी हो कैसे सकती है!

नवजात—तत्त्वतः उनमें कोई बुरी चीज़ नहीं होती क्योंकि उनके लिए यह सारी लीला है। अगर हम एक विशेष ऊँचाई से देखें तो पता लगेगा कि कोई भी चीज़ मूल रूप से बुरी नहीं है। नाटक में यदि कोई दुष्ट की भूमिका लेता है तो वह सचमुच बुरा नहीं बन जाता। वह भगवान् के प्रति, निर्देशक के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करता है। वह यह नहीं कह सकता कि मैं दुष्ट की भूमिका नहीं लूँगा, मुझे नायक ही बनना है।

नहीं भाईजी, भगवान् का प्रयोजन कैसे सिद्ध होता है?

नवजात—भगवान् का प्रयोजन उस मनुष्य में कैसे सिद्ध होता है? चलो देखें। हर मनुष्य के अन्दर भगवान् का प्रयोजन यही है कि वह देवत्व में विकसित हो। अब मान लो, दो पुरुष हैं। मैं केवल एक सिद्धान्त या कल्पना का उदाहरण दे रहा हूँ। उनमें से एक बहुत ज़्यादा सद्गुण-भरा है और दूसरा अवगुण-भरा। आश्चर्य की बात यह है कि प्रायः दुर्गुणवाले ज़्यादा बलवान् और सद्गुणवाले कमज़ोर होते हैं। यह है एक नाटक। दुर्गुणवालों की भी दो श्रेणियाँ होती हैं, एक वे जो दुर्बल होते हैं और दूसरे वे जो सचमुच मज़बूत होते हैं, जैसे दुर्योधन और रावण।

दुर्योधन एक महापुरुष था। युद्ध के अन्त में उसकी रक्षा की गयी। लोगों ने कहा, "तुम बच गये।" उसने उत्तर दिया, "नहीं, मेरे मित्र मारे गये, मैं क्यों बच रहूँ।" वह एक साधारण आदमी न था। वह साहसी और बहुत बड़ा सैनिक था, लेकिन उसके कुछ कर्म बुरे थे। हमें यह ख़याल रखना चाहिये कि उसने कुशासन नहीं किया। हो सकता है कि युधिष्ठिर उससे ज़्यादा अच्छा शासन करता, लेकिन उसने भी कुशासन नहीं किया। हाँ, दुर्योधन ने अपने भाइयों से बुरा व्यवहार किया और उन्हें धोखा दिया, लेकिन उसने ऐसा क्यों किया? जब उसे मरना ही था तो फिर राज्य के लिए लोभ क्यों? उसे तो वह अपने साथ न ले जाने वाला था, ऐसी चीज़ के लिए लड़ाई क्यों जो साथ न देगी? व्यर्थ में मार-काट क्यों? नहीं, इसका भी एक प्रयोजन था। ऐसा लग सकता है कि वह प्रयोजन राज्य की प्राप्ति

हो पर आध्यात्मिक दृष्टि से प्रयोजन था, भगवान् की ओर गति।

हम तीन उदाहरण लें—दुर्योधन, युधिष्ठिर और अर्जुन। युधिष्ठिर सत्य की मूर्ति माने जाते थे परन्तु श्रीकृष्ण के प्रिय तो अर्जुन ही थे। अर्जुन को आन्तरिक प्रकाश कृष्ण से मिला। अगर महाभारत न होती, अगर इतना बड़ा युद्ध न होता तो अर्जुन की प्रगति कैसे होती? श्रीकृष्ण *गीता* का सन्देश उन्हें कैसे देते? अर्जुन श्रीकृष्ण से कुछ पूछते ही कैसे और वे ग्रहणशील भी कैसे होते? अर्जुन तो यही कहते कि आप मुझे काल्पनिक उत्तर दे रहे हैं। लेकिन चूँकि यह युद्ध के बीच में था इसलिए उत्तर भी काल्पनिक न हो सकते थे। अर्जुन को एकदम व्यावहारिक और सीधे-सीधे उत्तरों की ज़रूरत थी।

अब मैं ज़रा विषयान्तर करके प्रचलित कहानी की एक बात सुनाऊँगा जो सचमुच महाभारत की घटना तो नहीं है पर है प्रचलित। जब अर्जुन युद्ध के पहले दिन के बाद घर लौटे तो द्रौपदी ने अपने प्रिय पति से कहा, "मैंने सुना है कि आपने लड़ाई करने से इन्कार कर दिया था। मैं आशा करती हूँ कि आप भूले नहीं होंगे कि मेरा किस तरह अपमान किया गया था और मैं ख़ुश हूँ कि आपने लड़ने का निश्चय कर लिया है।" अर्जुन ने उत्तर दिया, "द्रौपदी, जब मैं लड़ने के लिए गया था तो उन्हीं कारणों से गया परन्तु अब मैं इस कारण से नहीं लड़ रहा कि तुम्हारा अपमान किया गया था। मैं तुमसे स्पष्ट बात कह दूँ, अब मैं और किसी कारण से नहीं लड़ रहा, अब कृष्ण की आज्ञा ही मेरे लिए एकमात्र कारण है। अगर तुम्हारा अपमान न हुआ होता और फिर भी कृष्ण आज्ञा देते तो मैं ज़रूर लड़ता। अगर वे मुझे न लड़ने की आज्ञा देते तो मैं न लड़ता। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मुझे बस उन्हीं की आज्ञा माननी है और वे जो भी कहें वही करना है। युद्ध करने के मेरे मानव कारण सभी उड़ गये हैं।"

बाहर से वही काम था परन्तु अब पीछे की प्रेरणा बदल गयी थी।

हमें यह जानना चाहिये कि युद्ध करने के इच्छुक अर्जुन और अब युद्ध के लिए आये हुए अर्जुन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दो अलग-अलग व्यक्ति थे। तो यह महत्त्वपूर्ण बात है। युद्ध सचमुच मनुष्यों के लिए अवाञ्छनीय वस्तु है परन्तु वही युद्ध अर्जुन को भगवान् की ओर ले जाता है।

अब युधिष्ठिर को लें। सत्य के अवतार युधिष्ठिर को असत्य बोलने के

लिए बाधित होना पड़ा, हाँ केवल **एक ही** असत्य। मुझे लगता है कि बाद में स्वयं उन्होंने सोचा होगा, "यह जीवन भी क्या है? मैंने क्यों झूठ बोला? आख़िर सचमुच क्या परिणाम निकला? आख़िर मेरा बेटा अभिमन्यु भी तो मारा गया।" अन्त में जब पाण्डव हिमालय गये तब सभी भाइयों ने देह त्याग दी। शायद एक समय ऐसा आया होगा जब युधिष्ठिर ने अपने-आपसे कहा होगा, "यह सब निरर्थक है, सार्थक होगा केवल भगवान् के साथ एकत्व। वे मुझे जो भी काम दें वही मुझे करना होगा। मेरी बाक़ी सभी स्पृहाएँ चली जानी चाहियें।" भगवान् की ओर गति करने का अर्थ होगा, सभी प्रयोजनों को अलग करके केवल भगवान् की आज्ञा पर निर्भर रहना।

दुर्योधन के बारे में भी यही बात है। इतने बड़े राज्य का स्वामी बनने के बाद वह अपने सभी नाते-रिश्तेदारों, अपने बेटे, पोते और सभी महान् योद्धाओं के विनाश का कारण बना। वह एक साम्राज्य के विनाश का कारण बना। अपनी अन्तिम अवस्था में उसने क्या किया? मुझे लगता है कि उसने भगवान् से कहा होगा, "मैं नहीं जानता कि मैंने ठीक किया या ग़लत, आपने मुझे जो भूमिका दी उसी को मैंने पूरा किया, जो चेतना दी उसी के अनुसार चलता गया। भविष्य में मेरा पथ-प्रदर्शन कीजिये और मुझे बतलाइये कि मैं क्या करूँ। अगर मैंने दुष्ट की भूमिका पाकर आपका काम पूरा किया है, यदि रणभूमि में आपने अर्जुन को *गीता* दी है तो मेरा जीवन भी सफल हुआ, केवल अर्जुन का ही नहीं क्योंकि *गीता* का कारण मैं हूँ, अर्जुन नहीं।" तो हर एक अनुभवों के द्वारा प्रगति करता है, अनुभूतियाँ चाहे भली हों या बुरी, और व्यक्ति जितना विकसित हो उतनी ही महान् अनुभूतियाँ होती हैं। रावण जानता था कि राम भगवान् के अवतार थे फिर भी उसने उनके साथ युद्ध किया।

क्या गीता ने ये सब बातें इतने स्पष्ट शब्दों में कही हैं?

नवजात—*गीता* ये सब बातें नहीं कहती, *गीता* जीवन के दर्शन और उचित कार्य का मार्ग दिखाने के लिए है, उचित कार्य के साथ-साथ **सफल** कर्म का मार्ग भी वह दिखलाती है। हम अट्ठारहवें अध्याय में देख सकते हैं कि उचित कर्म असफल कर्म नहीं है क्योंकि सञ्जय अन्त में कहते हैं,

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिः मतिर्मम।।

—जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और धनुर्धर पार्थ हैं वहाँ विजय सुनिश्चित है।

तुमको धनुर्धर होना चाहिये परन्तु इसका मतलब भौतिक धनुष-बाण से नहीं है, बल्कि तुम्हें होना चाहिये कर्मी पुरुष, युद्ध के लिए प्रस्तुत योद्धा, ऐसा व्यक्ति जो भगवान् की आज्ञा से हर चुनौती को सहने के लिए तैयार हो, और जो परिणाम की परवाह न करे। अतः *गीता* केवल जीवन और कर्म के दर्शन का, सफल कर्म के दर्शन का मार्ग बतलाती है। इसके अतिरिक्त वह संक्षेप में अपने मुख्य विषय के साथ सम्बन्ध रखते हुए मृत्यु, पुनर्जन्म, कर्म इत्यादि के बारे में भी कहती है।

(क्रमशः)

—नवजातजी

दीप का त्यौहार

... यूँ कभी मत सोचिये दीपावली कुछ दूर है,
यह सोच ही संघर्ष की गति पर छिपा नासूर है।
ज़िन्दगी में सामना जब भी अँधेरे से हो कहीं
बस समझ लो दीप का त्यौहार है आज ही औ' यहीं।
इक दिया संघर्ष का फ़ौरन जला दो शान से,
धन्य कर दो पीढ़ियों को ज्योति के अवदान से।

रोशनी ख़ुद चाहती है आपके कुछ काम आये,
आपके संघर्ष में उसका कहीं कुछ नाम आये।
आप अपना सिर पकड़ कर, हार कर मत बैठिये,
अपने मनोबल की गहन गहराइयों में पैठिये।
उस अतल से एक ही हुंकार ऊपर आयेगी
गीत अपनी जीत के बस रोशनी ही गायेगी।

'वीणा' से साभार

—बालकवि बैरागी

मन चंगा तो कठौती में गंगा

"भगत जी, भूल गये न?"

"साधु महात्मा, मैं समझा नहीं, क्या भूल गया?" रैदास मोची ने पूछा।

"आज सोमवती अमावस्या है न? आपने मेरे साथ गंगा-स्नान करने के लिए चलने का वचन दिया था। काम में लगे रहने के कारण आपको पवित्र स्नान का आश्वासन याद नहीं रहा। लो, मैं फिर याद दिलाता हूँ।"

"कृपया साफ़-साफ़ कहिये, यों पहेलियाँ न बुझाइये।" मोची ने कहा।

"रैदास, मैं एक पक्का साधु हूँ। धर्म, कर्म, पूजा-पाठ, यज्ञ, तीर्थ-यात्राओं में विश्वास करता हूँ। आप सदा ही मेरे सत्संग में पधारते रहे हो, निम्न वर्ग के होते हुए भी सवर्गों की तरह यज्ञ, पूजा-अर्चना में सदा भाग लेते रहे हो, आपने वायदा किया था कि सोमवती अमावस्या के पवित्र दिन मेरे साथ गंगा-स्नान को चलेंगे। मैं तो सदा तप-जप में लीन भगवद्-भक्ति किया करता हूँ। शास्त्रों में अमावस्या के दिन गंगा-स्नान का बड़ा माहात्म्य माना गया है। अब अमावस्या का दिन निकट है। आप तो सदा ही अपने कर्म 'जूते गाँठने' में खोये रहते हैं। अपने कर्म में इतने संलग्न रहते हैं कि पूजा-पाठ, गंगा-स्नान तक भूल गये।"

भक्त रैदास को यकायक गंगा-स्नान का वायदा याद हो आया। वे मन ही मन दुःखी होकर पश्चात्ताप-भरी वाणी में बोले, "साधु महात्मा, आप मुझे क्षमा करें। मेरे भाग्य में अमावस्या के पवित्र स्नान का पुण्य कहाँ। एक ग्राहक से जूता तैयार कर तुरन्त देने का काम मिल गया। रोटी-रोज़ी के लिए यह मोची का रोज़गार है। इसी से जीविका चलती है। अच्छा मन लगा कर उत्तम कार्य करता हूँ। जूता गाँठने को मैं धर्म-कर्म की साधना की तरह ईश्वर की पूजा के रूप में ही मानता आया हूँ। जो कुछ करूँ, पूरा और सर्वश्रेष्ठ करूँ, किसी को मेरे रोज़गार से कोई शिकायत न रहे। अपने निश्चित कर्म को पूजा के रूप में ही भगवान् को समर्पित करता आया हूँ। जो कुछ है, वही परमात्मा को अर्पित है। कहीं भी रहूँ, वही मेरी पूजा-आराधना है।"

"स्पष्ट कहो, क्या मतलब है तुम्हारा? गंगा-स्नान को मेरे साथ चलोगे या नहीं? मुझे तो नियत समय पर पूजा-अर्चना के लिए जाना है। गंगाजी

को भेंट भी चढ़ानी है।"

"महात्मन्! कार्य की अधिकता के कारण मेरे भाग्य में गंगाजी का स्नान नहीं है। अपनी धर्म-कमाई, ईमानदारी से, परिश्रम में मिला हुआ मेरा यह एक पैसा लेते जाइये और गंगा माँ को रैदास के नाम से चढ़ा दीजिये।"

साधु गंगा-स्नान के लिए समय पर गंगाजी के तट पर पहुँचे। स्नान करने के बाद उन्हें भक्त रैदास के पैसे को अर्पण करने की सुधि आयी। मन-ही-मन वे गंगाजी से बोले, "माँ, यह एक पैसा तुम्हारे भक्त रैदास, चमार ने भेजा है। स्वीकार कीजिये।" कह कर पैसा गंगाजी में फेंक दिया।

इतना कहना और पैसा गंगाजी में गिरना था कि साधु ने आश्चर्य से देखा कि दो विशाल हाथ जल में से ऊपर उभरे और पैसे को हथेली में थाम लिया। अद्‌भुत दृश्य था वह!

साधु यह दृश्य देख कर चकित रह गया और सोचने लगा कि मैंने तो जन्म-भर जप, तप, धर्म किया, गंगाजी में स्नान किया, फिर भी माँ गंगा की कृपा न प्राप्त कर सका जब कि माँ के जल में बिना स्नान किये, बिना शरीर-शुद्धि के चमार रैदास को माँ की कृपा, प्रेम प्राप्त हो गया। वे रैदास के पास पहुँचे तथा उन्होंने सम्पूर्ण दृश्य वर्णित किया। अजीब अनुभव था।

भक्त रैदास मुस्कुराये। मानों कोई देवदूत उनकी वाणी में बोल उठा, "महात्मन्, यह सब समर्पित और भक्तिभाव से कर्तव्य-कर्म के निर्वाह का पुण्य फल है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। जो कोई भी पूरा मन लगा कर समर्पित भाव से अपना कर्तव्य-कर्म करेगा, उसे भगवान् की कृपा प्राप्त होगी। प्रत्येक कर्म यदि भक्तिभाव से, पूर्ण समर्पण से किया जाये, तो वही पूजा है। भगवान् उसी माध्यम से उसे पुण्य-फल देते हैं।"

साधु उन तथाकथित निम्न जाति के चमार, सन्त रैदास की पग-धूलि से अपना ललाट पवित्र करने के लिए उनके चरणों पर नत हो रहे।

'सतयुग की वापसी' से साभार —डॉ.रामचरण महेन्द्र

प्रभु के लिए काम करना
शरीर से प्रार्थना करना है।

—श्रीमाँ

विश्वास का झरना...

कभी-कभी किसी सामान्य दिन में घटी कोई असामान्य घटना जीवन के दृष्टिकोण को कैसे पलट देती है।

कॉलेज की फ़ाइलों में झुका मैं काम में मशग़ूल था कि 'हैलो' के अभिवादन से चौंक उठा। मेरे सामने खड़ा था सुदर्शन, छहफ़ुटा जवान जिसने हाथ मिलाने के लिए अपना ठूँठ आगे बढ़ा दिया था... जी हाँ, उसकी दोनों बाँहें बस कोहनी तक थीं।

पल-भर की सकपकाहट के बाद कुर्सी से तपाक् से उठ कर मैंने उसकी कोहनी का हलका-सा स्पर्श कर झुक-कर अभिवादन स्वीकार किया। अपने दोनों हाथ किसी दुर्घटना में खो चुका था वह। उसने अपना परिचय दिया, मैं यहाँ अंग्रेज़ी-साहित्य के सहायक प्रोफ़ेसर के रूप में आया हूँ श्रीमान्! नाम है मेरा अमिट। उसकी बातों से टपकता आत्म-विश्वास उसके सफल व्यक्तित्व की गाथा और लौह मन की कहानी कह रहा था।

मैंने उसे सामने की कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। मैं उसके साथ बातें करने को बेताब हो रहा था। उसने अपनी कहानी शुरू की और न चाहते हुए भी मेरी नज़र बार-बार उसकी बुश्शर्ट पर जा रही थी। 'छिः, क्या सोचेगा यह नौजवान मेरे बारे में' सोच कर मैं उसकी आँख की सीध में देखने की जितनी कोशिश करता, मेरी आँखें फिसल कर उतनी ही उसके हाथों पर ठहर जातीं। मैं समझ गया कि इसके सामने मैं तब तक सहज न हो पाऊँगा जब तक इन हाथों की कहानी न जान लूँ।

जब वह पाँचवी कक्षा में पढ़ता था, एक भयानक सड़क-हादसे में अपने दोनों हाथ गँवा कर ही बच पाया। महीने भर 'आई.सी.यू' में रहना पड़ा, तीन-चार महीने अस्पताल में और फिर शुरू हुई उस बच्चे की ज़िन्दगी की जंग।

"लेकिन तुमने अपनी पढ़ाई कैसे पूरी की अमिट?"

"जी, सच बात तो यह है कि इस दुर्घटना के बाद ही सचमुच मैंने पढ़ाई शुरू की। शायद हादसे के साथ-साथ विधाता ने मेरे दिल और दिमाग़ पर आत्म-विश्वास का, कभी न हार मान बैठने का रोगन लगा दिया। मैंने ठान ली, घर-भर से ठनवा ली—ज़िन्दगी न केवल जिऊँगा, बल्कि शान से,

सिर हवा में लहराते हुए, मस्ती से झूमते हुए, जीवन-सफ़र तय करूँगा।

उसकी बातें सुन-सुन कर मेरा मस्तक गर्व से ऊँचा उठता जा रहा था या श्रद्धा से नत हो रहा था, बता नहीं सकता, क्योंकि दोनों क्रियाएँ मानों साथ-साथ चल रही थीं।

"मैंने अपने पैरों की उँगलियों में क़लम पकड़ कर छठी कक्षा की पढ़ाई की, इम्तिहान दिया। शुरू-शुरू में सब अचरज और तारीफ़ की नज़रों से मुझे देखते, घूरते, फिर सब सामान्य हो गया—मेरे लिए भी, मेरे संगी-साथियों-अध्यापकों के लिए भी। "अमिट कभी नहीं मिटेगा" का मन्त्र-जाप मेरे हृदय में चलता ही रहता था।"

'मन चंगा तो कठोती में गंगा'—मैं बुदबुदा उठा।

"सर, जब हम सकारात्मक सोच से लबरेज़ हो जाते हैं तो भगवान् भी दौड़े-दौड़े आ खड़े होते हैं हमारा हाथ थामने। भले वे हाथ साबुत न भी हों!" कह कर वह अपने ठूँठ हिलाता हुआ, अपने ऊपर ही हँस पड़ा।

मैं चौंक उठा। सच है, 'हिम्मते मर्दां, मददे ख़ुदा!'

"जब मेरे हाथों के घाव भर गये तो मैंने अपनी बायीं कोहनी के ठूँठ से लटकते दो लोथड़ों के बीच क़लम पकड़ कर लिखने का अभ्यास शुरू कर दिया... महीने-भर में सफल हो गया मैं, पैर से निकल कर क़लम हाथ में आ गया। तो यह है मेरी छोटी-सी कहानी। सभी सुनने के लिए उत्सुक होते हैं, आप कह सकते हैं कि मैं भी सुनाने के लिए बेताब रहता हूँ।"

कहने को छोटी पर कितनी सारगर्भित थी उस सुदर्शन की वह ज़ुबानी। किसी विकलांग को देखते ही हमारा दिल दया से अनायास भर उठता है, उसके सामने बेचारेपन की हम एक दीवार उठा देते हैं और सामनेवाला भी दयनीय, बेबस, बेसहारा-सी मूर्ति बना रहता है, लेकिन मेरे सामने का नज़ारा एकदम अलग था। साहस के उस पुतले की आँखों में अपनी बदनसीबी को कोसने की हताशा नहीं थी बल्कि उनमें लहरा रही थीं ख़ुशी की लहरें, उनमें समाया हुआ था वह सन्तोष, प्रभु के प्रति वह नमन कि "मेरे अन्दर ज़िन्दगी को जूझने के हौसले का दीप जलाने वाले हे मेरे ईश्वर, तुझे कोटिशः प्रणाम!"

मैं उसे अहोभाव से एकदम निहारे जा रहा था, श्रद्धा से मेरा सिर झुका जा रहा था। वह मुस्कुरा कर बोला, "सर! जीवन को देखने का

मेरा नज़रिया है—अँधेरे-से-अँधेरे घण्टे में भी बस साठ मिनट होते हैं।" और उसने जोड़ा—"संसार में भगवान् ने असम्भव नाम की कोई चीज़ ही नहीं बनायी... नामुमकिन, कठिन, इत्यादि बिल्ले तो हम मनुष्य यहाँ-वहाँ टाँगते फिरते हैं। जिसकी ज़रूरत है वह है, सच्चा-निष्कपट, एकनिष्ठ, समर्पण-भरा प्रयास कि हम सफल **होकर** रहेंगे।" अमिट की आँखों से, बातों से विश्वास का झरना फूट रहा था।

उस नौजवान के सम्मुख मैं अपनी फ़ाइलों को भूल गया, कॉलेज में एक वरिष्ठ प्रोफ़ेसर की हैसियत से बैठा हूँ, भूल गया। भूल गया आसपास बैठे लोगों को और भूल गया ख़ुद को...। मेरे सामने अस्तित्व था तो बस अमिट नामक उस नौजवान का और उसकी बातों का।

हमने ऐसे बातें कीं जैसे कई दिनों के बिछुड़े दोस्त मिले हों, घर से लेकर सरकार की नीतियों के सुधार तक हम पहुँच गये! उसकी बातों की सकारात्मकता, उसके अटूट विश्वास की दृढ़ता... सब मुझे सुबह की ठण्डी-ठण्डी हवा का सुकून दे रहे थे।

"धन्यवाद, आपका सर! अब तो आपसे मुलाक़ात होती रहेगी, आपके यहाँ जो लग गया हूँ।" कहते-कहते वह जैसे ही उठा, मैंने लपक कर अपना हाथ उन कटे हुए हाथों की ओर बढ़ा दिया जिनका कुछ समय पहले स्पर्श करने से कतरा रहा था, जिन्हें देखने से आँखें चुरा रहा था...। उस स्पर्श में कितना जादू था! सकारात्मक निश्चय की लहरें मेरे अन्दर ठाठें मारने लगीं।

आधे घण्टे में मेरी ज़िन्दगी बदल गयी। 'चलता हूँ' कह कर मेरे अन्दर-बाहर मुस्कुराहट बिखेर कर वह मुड़ चला। अपनी जगह पर स्थिर खड़ा मैं प्रेमपूर्वक उसे निहारता चला गया। कमीज़ की बाँहों से झूलते हाथ गरुड़ के पंखों की तरह लग रहे थे जो मानों नयी उड़ान भरने, नये शिखरों को छूने पर तोल रहे हों।

'अग्निशिखा', मार्च २०१४ से **—वन्दना**

जीवन जीने के दो ही तरीक़े हैं।
पहला यह मानना कि कोई चमत्कार नहीं होता;
और दूसरा यह मानना कि हर वस्तु एक चमत्कार है।

हे प्रभो, मैं तुझे गहरी,
शुद्ध भक्ति के साथ नमन करती हूँ।
प्रभो, सभी हृदयों का एकमात्र स्वामी बन जा।

—श्रीमाँ

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

Renaissance

AN ONLINE JOURNAL OF SRI AUROBINDO SOCIETY

renaissance.aurosociety.org

PRESENTED BY BHĀRATSHAKTI

India must be reborn, because her rebirth is demanded by the future of the world.

Featuring curated pearls of wisdom from the oceanic writings of **Sri Aurobindo and the Mother**, as well as fresh perspectives and insights on India and her creative genius manifesting in various domains – spiritual, artistic, literary, philosophic, aesthetic.

Sri Aurobindo Society

BHĀRATSHAKTI

INDIA – FROM PAST DAWNS TO FUTURE NOONS

10 ISSUES PER YEAR

Released on the 21st of every month (special issue on August 15)

SUBSCRIBE FOR FREE

Date of Publication: 1st November 2024
Rs. 30 (Monthly)
अग्निशिखा एवम् पुरोधा, वर्ष २, अंक १६, PONHIN/2023/88119
PY/082/2024-2026
प्रकाशक स्थलः सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तं स्ट्रीट, पांडिचेरी ६०५००१

A Happy Announcement! Our Upcoming Film

SRI AUROBINDO
A CALL TO NEW INDIA
A New Dawn Series

A SHORT ANIMATION FILM BASED ON THE 5 DREAMS OF SRI AUROBINDO
BY SRI AUROBINDO SOCIETY

Another dream, the spiritual gift of India to the world has already begun.
... there is even an increasing resort not only to her teachings, but to her psychic and spiritual practice.

~ Sri Aurobindo

his message on the eve of India's independence, in the form of his 5 Dreams

Participate in creating an inspirational film!
DONATE at www.anewdawn.in